मार्क्सवाद जिंदाबाद !
संशोधनवाद मुर्दाबाद !!

'' ... जो कोई आधुनिक समाजवाद का विस्तारपूर्वक अध्ययन करता है, उसे मजदूर आंदोलन में 'विजित दृष्टिकोणों' से परिचित होना चाहिए। ...'' (एंगेल्स, आवास समस्या के दूसरे संस्करण की भूमिका)

'' संशोधनवाद की आर्थिक तथा राजनीतिक प्रवृत्तियों का स्वाभाविक पूरक समाजवादी आंदोलन के अंतिम लक्ष्य के प्रति उसका रवैया था। 'अंतिम लक्ष्य कुछ नहीं, आंदोलन ही सब कुछ है' बर्नस्टीन की यह प्रचलित उक्ति संशोधनवाद के सार की अभिव्यक्ति अनेक लंबे विवादों की अपेक्षा बेहतर करती है। हर मामले के मुताबिक अपना आचरण निर्धारित करना, आये दिन की घटनाओं के अनुसार, क्षुद्र राजनीतिक परिवर्तनों के अनुसार अपने को ढालना, सर्वहारा वर्ग के बुनियादी हितों और पूरी पूंजीवादी व्यवस्था के, समूचे पूंजीवादी विकास के आधारभूत लक्षणों को भुला देना, वास्तविक अथवा प्रत्याशित तात्कालिक लाभ की खातिर इन बुनियादी हितों को कुर्बान कर देना ऐसी है संशोधनवादी नीति। और इस नीति की प्रकृति से ही यह प्रत्यक्ष निष्कर्ष निकलता है कि यह नीति असंख्य विविध रूप धारण कर सकती है, कि प्रत्येक किंचित 'नया' प्रश्न, घटनाओं का किंचित आकस्मिक अथवा अप्रत्याशित उलट–फेर, चाहे वह उलटफेर विकास की बुनियादी लाइन को नगण्य पैमाने में और अल्पतम अवधि के लिए ही बदलने वाला क्यों न हो, सदा संशोधनवाद के इस या उस रूप को अनिवार्यतः जन्म देंगे।'' (लेनिन, मार्क्सवाद और संशोधनवाद)

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में मजदूर आंदोलन में मार्क्सवादी विचारों की विजय के बाद एक नयी परिघटना का उदय हुआ। समय–समय पर मजदूर आंदोलन में ऐसे लोग पैदा हुए जिन्होंने अपने को मार्क्सवादी घोषित करते हुए मार्क्सवादी सिद्वान्तों में संशोधन की मांग की। कुछ ने यह एकदम खुलकर किया तो कुछ ने लुके–छिपे। ऐसा अक्सर इस तर्क की आड़ में किया गया कि वस्तुगत परिस्थितियां समय के साथ बदल चुकी हैं और ये बदली हुयी परिस्थितियां मार्क्सवाद की प्रस्थापनाओं में परिवर्तन की मांग करती हैं। इस तरह की मांग करने वालों ने अपनी नयी प्रस्थापनाएं दीं और दावा किया कि न केवल वे बदले समय के अनुकूल हैं बल्कि स्वयं मार्क्सवाद के भी अनुकूल हैं।

लेकिन मार्क्सवाद में संशोधन दोनों तरह का हो सकता है। मार्क्सवाद की मूल क्रांतिकारी आत्मा को अक्षुण्ण रखते हुए वास्तव में समय के साथ पुरानी पड़ चुकी प्रस्थापनाओं को बदलना या नयी स्थितियों के हिसाब से सर्वथा नयी प्रस्थापनाएं प्रस्तुत करना मार्क्सवाद का सृजनात्मक विकास है। यह मार्क्सवादी विज्ञान को आगे बढ़ाता है। लेकिन इसका उलटा भी हो सकता है। इसमें मार्क्सवाद के सृजनात्मक विकास के नाम पर ऐसे सिद्वान्त पेश किये जा सकते हैं जो मार्क्सवाद की मूल क्रांतिकारी भावना का ही निषेध करते हों, मार्क्सवाद की मूलभूत वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं को खंडित करते हों और वास्तव में मजदूर वर्ग को क्रांति से विरत करने का, उसे सुधारवाद के रास्ते पर धकेलने का, बुर्जुआ वर्ग से समझौता करने का या उसके सामने घुटने टेक देने का मार्ग प्रशस्त करते हों। तब ये संशोधन मार्क्सवाद में सृजनात्मक विकास न होकर मार्क्सवाद का भ्रष्टीकरण हो जाते हैं।

एडवर्ड बर्नस्टीन और कोनार्ड स्मिट से शुरू होने वाली इस दूसरी प्रवृत्ति को ही कालांतर में संशोधनवाद कहा गया और क्रांतिकारी मार्क्सवादियों ने इससे मोर्चा लिया। तब से ही संशोधनवाद मार्क्सवाद के भ्रष्टीकरण और मजदूर आंदोलन को क्रांति से विरत करने का पर्याय बन गया।

मार्क्सवाद के भीतर से मार्क्सवाद का निषेध करने वाली इस परिघटना का उदय कोई संयोग नहीं था। इसके निश्चित सामजिक आर्थिक आधार थे। इसका निश्चित वर्गीय अंतर्य था।

उन्नीसवीं सदी के अंत से लेकर समूची बीसवीं सदी में समय–समय पर मार्क्सवाद के भीतर संशोधनवादी पैदा होते रहे हैं। समय और परिस्थिति के हिसाब से इनके द्वारा प्रस्तावित संशोधन अलग–अलग रहे हैं, इनके सिद्वान्त अलग–अलग रहे हैं।

इस लेख में हम बर्नस्टीन से लेकर डेंग स्याओ पिंग तक कुछ प्रमुख संशोधनवादी धाराओं का जायजा लेंगे। लेख का उद्देश्य संशोधनवाद की आम प्रवृत्तियों से वाकिफ होना और इनके भेष बदलकर आज के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में प्रकट होने से बचना है।

I

मार्क्सवाद के भीतर से मार्क्सवाद पर हमला पहले पहल उन्नीसवीं सदी के अंत में हुआ। इस संशोधनवादी हमले के नेता एडवर्ड बर्नस्टीन और कोनार्ड स्मिट थे। जहां बर्नस्टीन ने मार्क्सवाद के आर्थिक–राजनैतिक सिद्वान्तों पर हमला बोला वहीं स्मिट ने उसके दार्शनिक आधारों पर।

इन्होंने कहा कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मजदूर आंदोलन और समाजवाद के लिए उपयुक्त दर्शन नहीं है। समाजवाद के लिए ज्यादा उपयुक्त दर्शन इमैनुएल कांट का दर्शन है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद प्रकृति और समाज का सही विश्लेषण नहीं करता। इसके मुकाबले कांट का दर्शन कहीं ज्यादा सुसंगत व्याख्या प्रस्तुत करता है। उन्होंने नारा लगाया–'कांट की ओर वापस चलो'।

उन्होंने हेगेल का पूर्ण निषेध करते हुए द्वन्द्ववादी विकास के बदले शांतिपूर्ण, क्रमिक विकास की बात की। उन्होंने भाववाद को छूट देते हुए धर्म के साथ आंख–मिचौली की, राज्य ही नहीं स्वयं मजदूर पार्टी के संदर्भ में भी धर्म को व्यक्तिगत मामला घोषित कर दिया। उन्होंने कांट के 'निज रूप वस्तु' के सिद्वान्त की वकालत की और कहा कि वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को नहीं जाना जा सकता।

आर्थिक सिद्वान्तों के क्षेत्र में बर्नस्टीन ने घोषित किया कि विगत पचास सालों या उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में पूंजीवाद के विकास ने मार्क्सवाद के आर्थिक सिद्वान्तों को गलत साबित कर दिया है। मार्क्स ने पूंजीवाद का विश्लेषण करके बताया था कि पूंजीवाद के विकास के साथ पूंजी का संकेन्द्रण होता जायेगा, छोटी –मझोली पूंजी खत्म हो जायेगी, खेती में भी यही प्रवृत्ति हावी होगी, खेती में भी बड़े पैमाने का उत्पादन छोटी खेती से ज्यादा उत्पादक होगा, समाज में ध्रुवीकरण बढ़ता जायेगा, मजदूर वर्ग की बदहाली बढ़ती जायेगी, पूंजीवाद के संकट लगातार तीव्र होते चले जायेंगे। ये सब पूंजीवाद के खात्मे और समाजवाद की स्थापना की ओर ले जायेंगे।

बर्नस्टीन ने कहा कि तथ्य मार्क्स की इन बातों को गलत साबित करते हैं। पूंजीवाद–का विकास उल्टी दिशा में हुआ है। छोटी–मझोली पूंजी न केवल बनी हुयी है बल्कि बढ़ रही है। छोटे पैमाने की खेती ज्यादा लाभदायक है और वहां ध्रुवीकरण नहीं हो रहा है। मजदूर वर्ग की हालत और खराब होने के बदले और बेहतर हो रही है। पूंजीवाद के संकट बढ़ नहीं रहे हैं बल्कि गायब होने की ओर अग्रसर हैं। ट्रस्ट और कॉर्टेल के आ जाने पर तो वे संभवतः गायब ही हो जायेंगे क्योंकि इनके कारण बाजार की अराजकता खत्म हो जायेगी।

आर्थिक क्षेत्र में मार्क्स की बातों को गलत बताने के बाद वे आगे बढ़े और राजनीतिक क्षेत्र में यह सिद्वान्त प्रस्तुत किया कि 'आंदोलन ही सब कुछ है, अंतिम लक्ष्य कुछ भी नहीं है'। उनके अनुसार मार्क्सवाद मजदूर वर्ग क्रांति और उसके बाद समाजवाद की स्थापना को इस बात पर आधारित करता था कि संकट बढ़ते हुए अंत में इतने तीव्र हो जायेंगे कि वे पूंजीवाद को ध्वस्त कर देंगे। तब अकथनीय बदहाली का शिकार मजदूर वर्ग क्रांति कर सत्ता अपने हाथ में ले लेगा और समाजवाद का निर्माण करेगा। अब संकट बढ़ नहीं रहे हैं। मजदूर वर्ग की हालत भी नहीं बिगड़ रही है बल्कि वह बेहतर हो रही है। और बेहतर इसलिए हो रही है क्योंकि मजदूर वर्ग ने स्वयं को अपनी पार्टी, ट्रेड यूनियनों और सहकारिता में संगठित कर संघर्ष किया है। मजदूर वर्ग यदि यह संघर्ष इसी तरह आगे बढ़ाता है तो उसकी हालत और बेहतर होती जायेगी। उसके और पूंजीपति वर्ग के बीच खाई कम होती जायेगी। अब क्रांति तो होनी नहीं है। इसलिए मजदूर वर्ग को सारा ध्यान अपनी बेहतरी पर लगाना चाहिए जो वैसे भी दृष्टिगोचर लक्ष्य है। क्रांति की तरह कोई दूरगामी, अमूर्त, अगोचर लक्ष्य नहीं। मजदूर वर्ग यदि अपनी हालत बेहतर बनाने के संघर्ष में लगा रहा तो वह क्रमशः एक दिन समाजवाद तक पहुंच जायेगा। इसलिए मजदूरों को सारा ध्यान इस तरह के तात्कालिक आंदोलनों पर केन्द्रित करना चाहिए। 'आंदोलन ही सब कुछ है, अंतिम लक्ष्य कुछ भी नहीं'।

उन्होंने यह भी कहा कि राजनीतिक स्वतंत्रता, जनवाद और सार्विक मताधिकार के कारण वर्ग संघर्ष का आधार निर्मूल हो गया है। 'बहुसंख्या की इच्छा' के कारण राज्य का वर्गीय चरित्र नहीं रह गया है। यह सबका राज्य बन गया है और इसका इस्तेमाल कर मजदूरों की हालत में क्रमशः सुधार किया जा सकता है और समाजवाद की ओर बढ़ा जा सकता है।

संशोधनवादियों ने मार्क्स के मूल्य के सिद्वान्त में भी कमियां देखीं और उसे बोम–बोवर्क के सिद्वान्त के हिसाब से ठीक करने की इच्छा व्यक्त की।

बर्नस्टीन और स्मिट द्वारा मार्क्सवाद में किये जा रहे इन संशोधनों का जवाब क्रांतिकारी मार्क्सवादियों ने दिया। प्लेखानोव, काउत्स्की, लेनिन और रोजा लक्जमबर्ग ने इनके द्वारा प्रस्तुत किये जा रहे 'नवीन' सिद्वान्तों की धज्जियां उड़ा दीं। खासकर प्लेखानोव ने दर्शन, अर्थशास्त्र और राजनीति सभी क्षेत्रों में इनके द्वारा प्रस्तुत तथ्यों और तर्कों की जांच पड़ताल की तथा उन्हें एकदम गलत और लचर साबित कर दिया। उन्होंने विस्तार से दिखाया कि बर्नस्टीन ने पूंजीवाद के कुछ एक तथ्यों को एकांगी ढंग से प्रस्तुत कर उनसे गलत निष्कर्ष निकाले हैं। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के समग्र आंकड़े मार्क्स के विश्लेषण को सही साबित करते हैं। प्लखानोव ने स्मिट के नव कांटवादी दर्शन की भी धज्जियां उड़ा दीं। कुल मिलाकर, रोजा लक्जमबर्ग के शब्दों में, संशोधनवाद को बस अपना मुंह खोलना था और उसने अपना दिवालियापन सबित कर दिया। बुर्जुआ वर्ग द्वारा चिर–प्रचारित तर्कों का यह नया संस्करण मात्र था।

यहां यह काबिलेगौर है कि बर्नस्टीन और स्मिट के मार्क्सवाद पर इस हमले के मामले में काउत्स्की का रुख उतना दृढ़ नहीं था। उन्होंने कहा कि बर्नस्टीन वगैरह ने सवाल उठाकर और अपने संशोधन पेश कर सोचने के लिए मसाला दिया है। इसके लिए उन्होंने बर्नस्टीन वगैरह को धन्यवाद दिया। प्लेखानोव ने इसका तीखा प्रतिवाद किया और कहा कि बर्नस्टीन वगैरह ने हम मार्क्सवादियों को सोचने के लिए कोई मसाला नहीं दिया है। उन्होंने कोई नयी बात नहीं कही है। उनकी बातें वही हैं जो बुर्जुआ वर्ग एक लम्बे समय से कहता रहा है। बर्नस्टीन बगैरह ने तो बस उन्हें बुर्जुआ साहित्य से उठा लिया है और अपने संशोधन के तौर पर पेश कर दिया है।

क्रांतिकारी मार्क्सवादियों के इस जवाबी हमले से संशोधनवादी पराजित हो गये और उनके संशोधनवादी सिद्वान्तों को अंतर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग द्वारा रद्द कर दिया गया। जर्मनी की सामाजिक जनवादी पार्टी ने अपनी राष्ट्रीय कांग्रेस में एक प्रस्ताव द्वारा इन सिद्वान्तों को नकार दिया। यह मार्क्सवाद की संशोधनवाद पर जीत थी। लेकिन जैसा कि हम देखेंगे, दूसरे इंटरनेशनल के काउत्स्की जैसे नेताओं के ढुल–मुल रुख के चलते बर्नस्टीन वगैरह दूसरे इंटरनेशनल और अपनी देश की पार्टियों में बने रहे तथा प्रथम विश्व युद्व के दौरान दूसरे इंटरनेशनल के पतन में इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बर्नस्टीन और स्मिट जर्मनी की सामाजिक जनवादी पार्टी के महत्वपूर्ण नेताओं में थे। यही नहीं, वे एंगेल्स के मित्र भी थे। बर्नस्टीन ने तो एक लम्बे समय में एंगेल्स का इतना विश्वास हासिल कर लिया था कि वे **1895** में अपनी मृत्यु के समय बर्नस्टीन को अपनी सारी साहित्यिक धरोहर सौंप गये। बर्नस्टीन ने जब **1897** से मार्क्सवाद पर हमला शुरू किया तो उन्होंने एंगेल्स से अपनी मित्रता को हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया। उन्होंने दावा किया कि एंगेल्स उनके विचार जानते थे, कि उन्होंने अपने विचार कभी छिपाये नहीं। लेकिन इसके बावजूद एंगेल्स ने उन्हें अपनी साहित्यिक धरोहर सौंपी। इस तरह उन्होंने अपने संशोधनवादी विचारों के लिए एंगेल्स के प्राधिकार का इस्तेमाल करने का प्रयास किया।

लेकिन सच्चाई क्या थी? सच्चाई यह है कि मार्क्स और एंगेल्स द्वारा **1879** में ही तीखी झिड़की खाने के बाद बर्नस्टीन दुबक गये थे। उन्होंने अपने संशोधनवादी विचारों को छिपा लिया लेकिन उन्हें कभी छोड़ा नहीं। और जब मार्क्स (**1883**) और एंगेल्स (**1895**) में नहीं रहे तो वे अपने पुराने विचारों के साथ फिर हाजिर हो गये। एंगेल्स की कब्र पर अभी पहले पूफल उगे भी नहीं थे कि बर्नस्टीन ने अपना पुराना राग छेड़ दिया और संशोधनवादी जहर उगलना शुरू कर दिया। बर्नस्टीन ने बाद में यह स्वीकार भी किया कि उन्होंने **1879** के अपने विचार कभी छोड़े नहीं थे।

बर्नस्टीन जब जर्मन सामजिक जनवादी पार्टी में शामिल हुए तो वे ड्यूहरिंग के सिद्वान्तों से प्रभावित थे। बाद में उन्होंने मार्क्स एंगेल्स के विचारों को स्वीकार कर लिया। (इसी तरह कोनार्ड स्मिट भी पहले कांटवादी दर्शन से प्रभावित थे) लेकिन मार्क्सवाद को स्वीकार करने के बाद भी उन्होंने अपने निम्न बुर्जुआ विचार नहीं त्यागे और **1879** में उन्हें पार्टी का विचार बनाने का खुलेआम प्रयास किया। होहेबर्ग और श्राम्म के साथ मिलकर उन्होंने बाकायदा अपना एक कार्यक्रम पेश किया। इसके अनुसार मजदूर वर्ग को स्वयं अपनी मुक्ति का प्रयास करने के बदले बुर्जुआ और पेटी बुर्जुआ का मुंह देखना चाहिए क्योंकि ये 'शिक्षित' वर्ग ही उसे नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं। मजदूर पार्टी को मजदूर वर्ग की मुक्ति के लिए लड़ने वाली पार्टी न होकर सभी वर्गों का, मानवता का भला करने वाली पार्टी होना चाहिए।

मार्क्स और एंगेल्स ने तुरंत ही इन विचारों का खंडन किया और पार्टी के नेताओं से मांग की कि यदि ये लोग अपने विचार नहीं बदलते तो इन्हें पार्टी से निकाल बाहर करना चाहिए। उन्होंने कहा कि मजदूर पार्टी में अन्य वर्गों के लोग तभी आ सकते हैं जब वे अपने वर्ग के दृष्टिकोण को छोड़ दें और मजदूर वर्ग के दृष्टिकोण को अपना लें।

इनका मूल्यांकन करते हुए मार्क्स–एंगेल्स ने लिखा :

" तो यह रहा जूरिच के तीन सेंसरकर्ताओं का कार्यक्रम। यह गलतफहमी की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता। कम से कम हम लोगों के लिए जो **1848** के दिनों से ही इस लफ़्फाजी से खूब परिचित हैं। हमारे सामने निम्न पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो

यहां अपने को इस पूरी चिंता के साथ पेश कर रहे हैं कि सर्वहारा अपनी क्रांतिकारी स्थिति के दबाव के कारण 'बहुत ज्यादा दूर जा सकते हैं'। दृढ़ राजनीतिक विरोध की जगह आम मध्यस्थताऋ सरकार तथा पूंजीपति वर्ग के विरुद्व संघर्ष की जगह उन्हें अपनी ओर करने तथा समझाने–बुझाने की कोशिशऋ ऊपर से दुर्व्यवहार का अवज्ञापूर्ण प्रतिरोध करने की जगह विनम्रतापूर्वक सिर झुका देना और यह स्वीकार करना कि दंड उपयुक्त था। ऐतिहासिक रूप से आवश्यक तमाम टक्करों की व्याख्या गलतफहमियों के रूप में की जाती है तथा सारे वाद–विवाद इस आश्वासन के साथ समाप्त होते हैं कि आखिर हम मुख्य मुद्दे पर एकमत हैं। जो लोग **1848** में पूंजीवादी जनवादियों के रूप में सामने आये, वे भी अब अपने को आसानी से सामाजिक–जनवादी मान सकते हैं। पूंजीवादी जनवादियों के लिए जनवादी जनतंत्र की साध्यता उतनी ही दूर की चीज थी जितनी दूर की चीज सामाजिक जनवादियों के लिए पूंजीवादी प्रणाली का तख्ता उलटना है और इस कारण वर्तमान राजनीति में इसका कोई महत्व नहीं हैऋ जी भर कर मध्यस्थता, समझौतेबाजी और लोकोपकारिता की जा सकती है। ठीक यही चीज सर्वहारा वर्ग के तथा पूंजीपति वर्ग के बीच के संघर्ष के मामले में होती है। उसे कागज पर तो स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि इसके अस्तित्व से अब इंकार नहीं किया जा सकता है, परन्तु व्यवहार में उस पर पर्दा डाला जाता है, उस पर लीपापोती की जाती है, उसे ढीला किया जाता है! सामाजिक जनवादी पार्टी मजदूर पार्टी ***न बने,*** वह पूंजीपति वर्ग या किसी भी अन्य की घृणा अर्जित न करेऋ उसे सर्वोपरि पूंजीपति वर्ग के बीच उत्साह पूर्ण प्रचार करना चाहिए, उसे दूरगामी लक्ष्यों पर, जो पूंजीपति वर्ग को भयभीत कर उसे दूर कर सकते हैं और जो हमारी पीढ़ी के जीवनकाल में वैसे भी साध्य नहीं है, जोर देने के बजाय सर्वोपरि अपनी पूरी शक्ति तथा स्फूर्ति पैबंदबाजी वाले उन निम्न पूंजीवादी सुधारों पर केन्द्रित करनी चाहिए जो पुरानी सामाजिक व्यवस्था को अवलम्ब प्रदान करते हुए संभवतः अंतिम महाविपत्ति को धीर–धीरे, अलग–अलग अंशों में तथा यथासंभव शांतिपूर्ण ढंग से होने वाले विघटन की प्रक्रिया में बदल देंगे। ये वही लोग हैं जो जाहिराना तौर पर अथक कार्यकलाप में जुटे रहने का दिखावा करते हुए स्वयं कुछ नहीं करते, यही नहीं यह कोशिश करते हैं कि चख–चख के सिवाय और कुछ न होने दिया जायऋ **1848** और **1849** में किसी भी रूप की कार्रवाई के प्रति इन्हीं लोगों के भय ने आंदोलन की राह में पग–पग पर बाधा डाली और अंत में उसे पराजित करायाऋ वे वही लोग हैं जो कभी प्रतिक्रिया नहीं देख पाते और फिर अपने को अंत में अंधेरी –बंद गली में, जहां न तो प्रतिरोध न संघर्ष संभव होता है, पाकर सर्वथा आश्चर्यान्वित हो जात हैं. ये वही लोग हैं जो इतिहास को अपने कूपमंडूकतावादी दृष्टिकोण तक सीमित रखना चाहते हैं परन्तु जिनके साथ इतिहास कभी रुकता नहीं, वरन अपने पथ पर अग्रसर होता जाता है।'' (मार्क्स और एंगेल्स, तीन जूरचाइयों का घोषणापत्र, संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, प्रगति प्रकाशन मास्को, **1978**, खण्ड**–3**, भाग**–1**, पृष्ठ.**110–111**, जोर मूल में)

इनके विचारों के आधार का विश्लेषण करते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने बताया कि पूंजीवादी और निम्न पूंजीवादी वर्गों से आने वाले ये लोग सतही ढंग से सीखे गये समाजवादी विचारों का विश्वविद्यालय या अन्य कहीं सीखे गये विचारों के साथ सामंजस्य बैठाते हैं और इस तरह घालमेल कर अपने उलझन भरे नवीन सिद्वान्त पेश करते हैं। इनसे मांग की जानी चाहिए कि ऐसा करने के बदले वे नये विज्ञान (वैज्ञानिक समाजवाद) का पूर्ण अध्ययन करें और सर्वहारा आंदोलन में शामिल होते समय अपने पूंजीवादी या निम्न पूंजीवादी अवशेष साथ न लायें, अपितु सर्वहारा दृष्टिकोण को सच्चे हृदय से अंगीकार करें।

मार्क्स–एंगेल्स के इस तीखे संघर्ष के कारण बर्नस्टीन ने अपने निम्न पूंजीवादी विचारों को छिपाकर एक ओर रख दिया और मार्क्स–एंगेल्स के सच्चे अनुयाई होने का दिखावा करने लगे। लेकिन उन्होंने अपने निम्न पूंजीवादी विचारों को त्यागा नहीं था। एंगेल्स के मरने के फौरन बाद वे अपने पुराने विचारों को नये रंग–रोगन में रंग कर पुनः हाजिर हो गये। इस बीच उन्होंने जर्मनी के मजदूर आंदोलन और साथ ही दूसरे इंटरनेशनल में जो प्रतिष्ठा हासिल कर ली थी उसके चलते उन्हें अपने संशोधनवादी विचारों को दूर–दूर तक प्रसारित करने में मदद मिली। जैसा कि हम अगले हिस्से में देखेंगे, ऐसा होने के कुछ अन्य आधार भी थे। क्रांतिकारी मार्क्सवादियों द्वारा बर्नस्टीन वगैरह के संशोधनवादी विचारों को पराजित कर दिये जाने के बावजूद ये जर्मन और अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन में बने रहे और अपना विषाक्त प्रभाव फैलाते रहे। इनके प्रभाव का खुलासा प्रथम विश्व युद्व के साथ हुआ।

यहां यह काबिलेजिक्र है कि ांस के मिलेरां वगैरह सुधारवाद के रास्ते पर चलते हुए इस समय तक वहां पहुंच गये थे कि वे बुर्जुआ मंत्रिमंडल में शामिल हो गये। इस प्रवृत्ति को मिलेरांवाद नाम दिया गया और दूसरे इंटरनेशनल ने इसे रद्द कर इसकी भर्त्सना की। लेकिन बर्नस्टीन के सिद्वान्त और कुछ नहीं इसी मिलेरांवादी प्रवृत्ति की सैद्वान्तिक अभिव्यक्ति थे। प्रथम विश्व युद्व के बाद से सामाजिक जनवादी पार्टियां बुर्जुआ सरकारों में शामिल होने लगीं और दूसरे द्वितीय विश्व युद्व के बाद तो यह उनका प्रमुख काम बन गया।

II

जब बर्नस्टीन और स्मिट ने अपने संशोधनवादी सिद्वान्त पेश किये तब जर्मनी की सामाजिक जनवादी पार्टी के बहुत बड़े हिस्से ने इन विचारों को नकार दिया। इन विचारों का यही हश्र समूचे दूसरे इंटरनेशनल में हुआ। लेकिन बर्नस्टीन और स्मिट आधार विहीन नहीं थे। औपचारिक तौर पर मार्क्सवादी सिद्वान्तों की स्वीकृति देते हुए एक बड़ा हिस्सा वास्तव में अवसरवादी नीतियों पर चल रहा था। यह जुबानी तौर पर तो मार्क्सवादी सिद्वान्तों को मान्यता देता था लेकिन वास्तव में यह अवसरवादी था। खासकर ट्रेडयूनियन, सहकारिता और संसदीय मोर्चे पर लगे हुए लोगों में इनकी भरमार थी। इसकी एक अभिव्यक्ति **1907** में स्टुटगार्ट में हुए दूसरे इंटरनेशनल की कांग्रेस में हुयी जब औपनिवेशिक सवाल पर जर्मन पार्टी के प्रतिनिधियों ने खुलेआम साम्राज्यवादी नीति अपनाई। उपनिवेश संबंधी आयोग में बहुमत अवसरवादियों का था और कांग्रेस में भी क्रांतिकारियों के **127** मत के मुकाबले अवसरवादियों को **108** मत मिले। **10** लोग तटस्थ रहे थे। स्टुटगार्ट कांग्रेस ने आने वाले प्रथम विश्व युद्व की घटनाओं की एक पूर्व झलक दे दी थी। इस कांग्रेस के बारे में क्लारा जेटकिन के मुखपत्र ने कहा था –'' इस बार बहुसंख्य आयोगों में और बहुसंख्य मसलों पर जर्मनी के प्रतिनिधि अवसरवाद के नेता थे।'' इस कांग्रेस के बारे में लेनिन ने यह टिप्पणी की थीः ''इस सिलसिले में उल्लेखनीय और खेदजनक परिघटना यह थी कि जर्मन सामाजिक जनवाद, जिसने मार्क्सवाद में क्रांतिकारी दृष्टिकोण की अब तक सदैव रक्षा की है, ढुल–मुल सिद्व हुआ या उसने अवसरवादी स्थिति अपनाई''। हालांकि क्लारा जेटकिन के मुखपत्र ने यह कहा था कि ''सारे प्रश्नों पर अवसरवाद की ओर कतिपय समाजवादी पार्टियों के विभिन्न प्रकार के भटकावों को समस्त देशों के समाजवादियों के सहयोग से क्रांतिकारी अर्थ में दुरुस्त कर दिया गया।'' लेकिन बाद में घटनाओं ने दिखाया कि यह मात्र औपचारिक था। वास्तव में अवसरवाद ने समूचे दूसरे इंटरनेशनल में बहुत गहरी जड़ें जमा ली थीं। बर्नस्टीन और स्मिट तो सैद्वान्तिक तौर पर उन्हीं बातों को सूत्रित कर रहे थे जिन पर एक बड़ा हिस्सा वास्तव में, व्यवहार में चल रहा था।

1907 की स्टुटगार्ट कांग्रेस और **1912** की बैसेल कांग्रेस में दूसरे इंटरनेशनल ने एक युद्व विरोधी प्रस्ताव पास किया। तब तक, खासकर **1912** आते–आते साम्राज्यवादियों के बीच युद्व का खतरा एकदम प्रत्यक्ष हो गया था। इन कांग्रेसों ने आसन्न युद्व को लुटेरों का युद्व माना और घोषित किया कि ''यदि युद्व छिड़ जाता है तो उन्हें जनसाधारण को उद्वेलित करने के लिए युद्व द्वारा तीक्ष्ण बनने वाले आर्थिक तथा राजनीतिक संकट का भरसक लाभ उठाना चाहिए''। इसने समाजवादियों का युद्व के विरुद्व सक्रियतापूर्वक संघर्ष करने के लिए आह्वान किया।

लेकिन जब अगस्त **1914** में वास्तव में प्रथम विश्व युद्व शुरू हुआ तो दूसरे इंटरनेशनल की पार्टियों के अधिकांश हिस्सों ने इन प्रस्तावों के विरुद्व आचरण किया। उन्होंने सर्वहारा अंतर्राष्ट्रवाद को त्याग दिया और अपने–अपने देश के पूंजीपति वर्ग के पीछे, साम्राज्यवादियों के पीछे लामबंद हो गये। दूसरे इंटरनेशनल का शर्मनाक पतन हो गया।

विश्व युद्व ने एक झटके से दूसरे इंटरनेशनल के सड़ते–बजबजाते अवसरवाद को खोलकर सामने रख दिया। युद्व ने सालों से चले आ रहे समझौतों और ढकने–मूंदने के प्रयासों को तार–तार कर दिया। सारी पार्टियों का एक बड़ा हिस्सा सीधे–सीधे अपनी सरकारों का समर्थन करने लगा। वह अंधराष्ट्रवादी हो गया। एक दूसरे हिस्से ने मध्यमार्गी स्थिति अपनाई। वह कुछ औपचारिक बातें करते हुए अपने को दक्षिणपंथियों से अलग दिखाने का प्रयास करता रहा लेकिन व्यवहार में उनसे नाता तोड़ने से इंकार कर दिया। वास्तव में उसने दक्षिणपंथियों के लिए सिद्वान्त और तर्क गढ़े। केवल एक छोटा हिस्सा ही अंतर्राष्ट्रवाद पर दृढ़ता पूर्वक खड़ा रहा, साम्राज्यवादी युद्व का विरोध करता रहा। लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक इसमें प्रमुख थे।

दूसरे इंटरनेशनल के सबसे बड़े सिद्वान्तकार काउत्स्की ने मध्यमार्गी स्थिति अपनाई। इन्होंने ऊपरी तौर पर अपने को अंतर्राष्ट्रवादी दक्षिणपंथियों से अलग दिखाने का प्रयास किया लेकिन वास्तव में हर व्यावहारिक मसले पर उन्हीं के साथ खड़े थे। फिर शुरू हुआ उनके द्वारा मार्क्सवाद का बेमिसाल विकृतीकरण। बर्नस्टीन ने डेढ़ दशक पहले मार्क्सवाद में संशोधन करने की मांग पेश की थी। इन्होंने मार्क्सवाद की भ्रष्ट और विकृत व्याख्या आरंभ कर दी। अपने और दूसरे इंटरनेशनल के पतित व्यवहार को न्यायसंगत ठहराने के लिए उन्होंने अपने पुराने मार्क्सवादी विचारों को तिलांजली दे दी और मार्क्सवाद की वह व्याख्या करने लगे जो अवसरवादियों और साम्राज्यवादियों की सेवा करता था। ऐसा करते हुए उन्होंने अपने अवसरवादी सिद्वान्त पेश किये जिनमें अति कुख्यात हुआ अतिसाम्राज्यवाद का सिद्वान्त।

युद्व के मसले पर अपने घृणित व्यवहार की रक्षा करते हुए उन्होंने क्रांतिकारी युद्वों और प्रतिक्रियावादी युद्वों के भेद को भुला दिया। उन्होंने मार्क्सवाद की युद्व के संबंध में इस शिक्षा को त्याग दिया कि युद्व अन्य तरीकों से राजनीति का जारी रूप है। उन्होंने साम्राज्यवादियों के लुटेरे युद्व और अपने प्रगतिशील दौर में पूंजीपति वर्ग के राष्ट्रीय मुक्ति युद्व के फर्क को भुला दिया। इन्होंने राष्ट्रीय मुक्ति युद्व के मामले में मार्क्सवाद को त्याग दिया और साम्राज्यवादियों का दृष्टिकोण अपना लिया।

साम्राज्यवाद के मामले में उसके चरित्र का उद्घाटन करने और उसके जरिये साम्राज्यवादी युद्व की व्याख्या करने के बदले उन्होंने उसके चरित्र को ढंकने वाला सिद्वान्त पेश किया। इससे भी आगे बढ़कर उन्होंने अतिसाम्राज्यवाद का सिद्वान्त पेश किया और कहा कि साम्राज्यवाद के युग में साम्राज्यवादी युद्वों से मुक्ति पाई जा सकती है। खासकर उन्होंने लेनिन के साम्राज्यवाद के सिद्वान्त पर हमला किया।

अंतर्राष्ट्रीयतावाद का त्याग करते हुए उन्होंने बहाना बनाया कि उम्मीद के मुताबिक जनता ने क्रांतिकारी भावना का परिचय नहीं दिया, इसलिए दूसरे इंटरनेशनल का पतन हुआ। क्रांति, क्रांतिकारी संकट इत्यादि के बारे में उन्होंने अभी हाल के (**1909** के) अपने सिद्वान्तों का छोड़ दिया और एकदम अवसरवादी कूपमंडूक अवस्थिति अपना ली। युद्व का विरोध करते हुए जनता को क्रांति के लिए उभारने का प्रयास करने के बदले उन्होंने साम्राज्यवादियों द्वारा सीमित वैध दायरे में अपने को कैद कर लिया और अपने को जायज ठहराने के लिए जनता को कोसने लगे। वे इंतजार करने लगे कि कब युद्व समाप्त हो, शांति बहाल हो और वे अपने पुराने दिनों में, क्रांति का जुबानी खर्च करते हुए सुधारवादी कार्रवाइयों के दिनों में वापस लौट सकें। काउत्स्की सिद्वान्त और व्यवहार के अलगाव का प्रतीक पुरुष सिद्व हुए और अब वे अपने पतित व्यवहार को जायज ठहराने के लिए मार्क्सवादी सिद्वान्तों का भ्रष्टीकरण करने लगे।

लेकिन अक्टूबर **1917** में बोल्शेविकों के नेतृत्व में रूस की अक्टूबर समाजवादी क्रांति ने उनका बेड़ा और गर्क कर दिया। बोल्शेविकों ने दूसरे इंटरनेशनल के सारे कूड़े–कचरे को किनारे लगाते हुए, जिसमें रूस के मेंशेविक भी थे, पूंजीपति वर्ग को पराजित कर दिया और सत्ता पर अधिकार कर लिया। काउत्स्की और उनके जैसे दूसरे क्रांति के गद्दारों के लिए यह एकदम असह्य हो गया। उन्होंने रूस की बोल्शेविक क्रांति के खिलाफ अभियान छेड़ दिया और ऐसा करते हुए बुर्जुआ जनवाद, राज्य, समाजवादी क्रांति तथा सर्वहारा तानाशाही के बारे में मार्क्सवाद की शिक्षाओं को विकृत करना शुरू कर दिया। उन्होंने बुर्जुआ जनवाद की गैर वर्गीय व्याख्या पेश की और राज्य के बारे में मार्क्स–एंगेल्स की शिक्षाओं को एकदम भुला दिया। सर्वहारा तानाशाही के बारे में उन्होंने कहा कि यह मार्क्सवाद का कोई मूलभूत सिद्वान्त नहीं है और मार्क्स ने इसके बारे में यूं ही चलते–चलते एक–दो बार जिक्र कर दिया था। समाजवादी क्रांति के बारे में उन्होंने कहा कि रूसी (और यहां तक कि यूरोपीय) समाज इसके लिए अभी तैयार नहीं है। पूंजीवाद के एक लम्बे विकास के बाद ही यह तैयार होगा। तभी सर्वहारा भी सत्ता संभालने के लिए तैयार होगा। जब तक सर्वहारा आबादी का बहुमत नहीं हो जाता और जब तक वह सत्ता दखल के लिए तैयार नहीं हो जाता तब तक समाजवादियों को सत्ता पर कब्जा नहीं करना चाहिए बल्कि शान्तिपूर्वक तैयारी करनी चाहिए।

काउत्स्की और उनके सहयोगियों के ये सिद्वान्त मार्क्सवाद पर भंयकर हमला थे। वे मार्क्सवादी शिक्षाओं को न केवल विकृत करते थे बल्कि उन्हें पूर्णतया भ्रष्ट कर देते थे। इसके बाद मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आत्मा का कुछ नहीं बचता था, वह साम्राज्यवादियों को स्वीकार्य पूर्णतया सुधारवादी सिद्वान्त में तब्दील हो जाता था।

काउत्स्की और दूसरे इंटरनेशनल के उनके सहयोगियों द्वारा मार्क्सवाद पर इस भीषण हमले से मार्क्सवाद की रक्षा लेनिन ने की। लेनिन ने दूसरे इंटरनेशनल के इन पतित नेताओं के साथ संघर्ष में न केवल मार्क्सवाद की रक्षा की बल्कि उसे विकसित भी किया। उन्होंने मार्क्सवाद को एक नई ऊंचाई तक पहुंचाया जिसे बाद में स्टालिन ने मार्क्सवाद–लेनिनवाद का नाम दिया। यहां यह याद रखना होगा कि लेनिन ने यह सारा कुछ रूसी क्रांति को संगठित करने की प्रक्रिया में किया, वह रूसी क्रांति जो वैश्विक क्रांति का एक हिस्सा थी।

लेनिन ने 'काउत्स्की, प्लेखानोव एवं अन्यों द्वारा' विकृत किये गये सभी सवालों पर मार्क्सवाद की रक्षा की। उन्होंने साम्राज्यवाद का मार्क्सवादी विश्लेषण किया और उसकी रोशनी में साम्राज्यवादी युद्वों की व्याख्या पेश की। उन्होंने पूरब और पश्चिम की क्रांतियों के संबंध का खुलासा किया और वैश्विक क्रांति की एक समग्र रणनीति पेश की। सर्वहारा तानाशाही के मार्क्सवादी विचारों की पुरजोर स्थापना करते हुए उन्होंने घोषित किया कि केवल वही मार्क्सवादी है जो सर्वहारा तानाशाही के सिद्वान्त को स्वीकार करता है। जो केवल वर्ग–संघर्ष को स्वीकार करने तक स्वयं को सीमित रखता है, वह मार्क्सवादी नहीं है। उन्होंने ढीली–ढाली सुधारवादी पार्टियों के बरक्स पेशेवर क्रांतिकारियों पर आधारित लौह अनुशासन वाली कसी हुयी पार्टी की अवधारणा प्रस्तुत की और वैध कामों को अवैध कामों से मिलाने को आवश्यक घोषित किया। उन्होंने बुर्जुआ जनवाद के चरित्र का खुलासा कर उसकी सीमाओं को स्पष्ट कर दिया और उसके बरक्स सर्वहारा जनवाद और सोवियत राज्य के सिद्वान्त को प्रस्तुत किया। यदि दूसरे इंटरनेशनल का पतन और उसके द्वारा मार्क्सवाद का विकृतीकरण मजदूर वर्ग के लिए बहुत दुःखद घटना थी तो इसके दूसरे पहलू के तौर पर इसके साथ लेनिन के संघर्ष में मार्क्सवाद का विकास हुआ और क्रांतियों के विजय का मार्ग प्रशस्त हुआ। दूसरे इंटरनेशनल के कूड़े–कचरे के सफाये के बिना न तो रूस की क्रांति सम्पन्न हो सकती थी और न बाद की क्रांतियां।

दूसरे इंटरनेशनल के पतन के बीज उसके विकास में ही निहित थे। पेरिस कम्यून के बाद से लेकर प्रथम विश्व युद्व की शुरुआत तक का दौर यूरोप में शांतिपूर्ण विकास का दौर था। इसी दौर में यूरोप के विभिन्न देशों में सामाजिक जनवादी पार्टियां पैदा हुयीं और विकसित हुयीं **1878** से **1890** तक जर्मनी में समाजवाद विरोधी कानून लागू होने के अलावा ज्यादातर ये पार्टियां वैध ढंग से काम करती रहीं। ट्रेड यूनियनें, सहकारिताएं और संसदीय चुनाव इनके आंदोलन और संगठन के मुख्य रूप थे।

लम्बे समय तक कानूनी दायरे में संगठन और संघर्ष करने तथा सुधारवादी कार्रवाइयों तक सीमित रहने के चलते इन पार्टियों के भीतर अवसरवादी रुझान बहुत तेजी से बढ़ने लगा। ये न्यूनतम प्रतिरोध के रास्ते पर चलने लगीं। मार्क्स–एंगेल्स ने शुरुआत में ही इस प्रवृत्ति को भांप लिया और उसकी भर्त्सना की। **1895** की एक घटना ने बहुत पहले ही इस रुझान को उजागर कर दिया था।

1895 में जर्मन पार्टी के नेताओं ने एंगेल्स से मार्क्स की पुस्तिका 'नंस में वर्ग–संघर्ष' की एक भूमिका लिखने का आग्रह किया। जब यह भूमिका तैयार हो गई तो इन्होंने कहा कि यह बहुत उग्र है और हमारी वैध स्थिति को देखते हुए इससे अड़चनें आ सकती हैं। उन्होंने एंगेल्स से इसके स्वर को नरम करने और कुछ हिस्सों को निकाल देने को कहा। एंगेल्स पार्टी के नेताओं के इस रीढ़विहीन व्यवहार से बहुत नाराज हुए लेकिन अंत में सुधार करने को राजी हो गये। लेकिन एंगेल्स के गुस्से का तब ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि इस परिवर्तित भूमिका के आधार पर ये नेता दावा कर रहे हैं कि एंगेल्स भी किसी भी कीमत पर वैधता और शांतिपूर्ण रास्ते के समर्थक हैं। (लिब्कनेख्त ने इस भूमिका के एक हिस्से को कांट–छांट कर ठीक इसी उद्देश्य से पार्टी मुखपत्र में प्रकाशित किया)। उन्होंने बिना कंटी–छंटी मूल भूमिका को अविकल प्रकाशित करने की मांग की। लेकिन कुछ समय बाद ही उनकी मृत्यु हो गई।

यह घटना तो दूसरे इंटरनेशनल की पार्टियों के भीतर पल–बढ़ रहे और गहरी जड़ें जमा रहे अवसरवाद की एक बानगी मात्र थी। जैसा कि हम पहले देख आये हैं उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में पैदा हुए बर्नस्टीन और स्मिट के संशोधनवाद ने इसी प्रवृत्ति को सैद्वान्तिक स्वर प्रदान किया था।

जैसा कि बाद में प्रथम विश्व युद्व ने दिखाया, दूसरे इंटरनेशनल में मार्क्सवाद विरोध की दो प्रवृत्तियां एक साथ विद्यमान थीं। एक खुलेआम मार्क्सवाद में संशोधन की मांग कर रही थी और अपना संशोधनवादी सिद्वांत पेश कर रही थी। दूसरी औपचारिक तौर पर मार्क्सवादी सिद्वान्तों पर खड़ा होने का दावा करती थी लेकिन वास्तव में उसी जमीन पर खड़ी थी जिस पर खुले संशोधनवादी। दोनों में व्यवहारतः कोई फर्क नहीं था। व्यवहारतः दोनों शुद्व सुधारवादी थे। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि प्रथम विश्व युद्व के दौरान संशोधनवादी बर्नस्टीन और 'रूढ़िवादी मार्क्सवादी' काउत्स्की एक ही जगह पाये गये– स्वतंत्र सामाजिक जनवादी पार्टी में, धुर अंधराष्ट्रवादियों का समर्थन करने वाले मध्यमार्गियों में।

इन पार्टियों को बड़े ट्रेड यूनियन नौकरशाह और इनके संसदीय गुट चलाते थे और न्यूनतम प्रतिरोध के रास्ते पर चलते हुए ये पहले ही आकंठ सुधारवाद के दलदल में डूब गये थे। बर्नस्टीन ने इन्हें सैद्वान्तिक स्वर प्रदान किया था जबकि काउत्स्की जैसे लोग औपचारिक तौर पर मार्क्सवाद की बात करते हुए इनसे अपने को अलग दिखाने का प्रयास करते रहे। लेकिन संशोधनवादियों और सुधारवादियों को अपनी कतारों से निकाल बाहर करने का साहस इन्होंने कभी नहीं किया।

जब तक संकट तीखा नहीं हुआ तब तक यह सब कुछ चलता रहा। लेकिन जब युद्व के संकट ने पर्दे को हटा दिया तो इन सबका चरित्र एक बारगी सामने आ गया। मजदूर वर्ग की समवेत अंतर्राष्ट्रीय शक्ति से साम्राज्यवादियों को देख लेने की धमकी देने वाले नेता युद्व शुरू होने पर अपने–अपने साम्राज्यवादी बुर्जुआ के चाकर बन गये। पाया यह गया कि पिछले **25** सालों से दूसरे इंटरनेशनल के रूप में मजदूर वर्ग के अंतर्राष्ट्रीय हिरावल का विकास नहीं हो रहा था बल्कि पूंजीपति वर्ग के ताबेदारों की कतार खड़ी हो रही थी। मजदूर वर्ग अपने ही नेताओं की गद्दारी से बुरी तरह छला गया था।

दूसरे इंटरनेशनल के इस पतन का निश्चित सामाजिक आधार था। पूंजीवाद के साम्राज्यवाद में विकास ने मुट्ठी भर साम्राज्यवादी देशों को बाकी दुनिया को लूटने और अतिमुनाफा कमाने का अवसर दे दिया था। ये साम्राज्यवादी अपने द्वारा कमाये जा रहे अतिलाभ का एक छोटा सा हिस्सा अपने मजदूर वर्ग के छोटे से ऊपरी हिस्से को देकर उसे अभिजात बनाने और पालतू बनाने में कामयाब हो गये थे। अभिजात मजदूर वर्ग का यह हिस्सा और मजदूर आंदोलन के भांति–भांति के नेता, पत्रकार और नौकरशाह अपने साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग के ताबेदार हो गये थे, उनके एजेन्ट बन गये थे। मजदूर वर्ग के व्यापक और दूरगामी हितों को भूलकर वे अपने संकीर्ण और तात्कालिक लाभों तक, बुर्जुआ वर्ग से मिलने वाली जूठन तक सीमित हो गये थे। इसके अलावा पेटी बुर्जुआ से मजदूर वर्ग में लगातार भर्ती ने इस प्रवृत्ति को और ज्यादा मजबूत किया।

लेनिन ने इन सबका यह समाहार किया :

> ''दूसरे इंटरनेशनल का पतन यूरोप में अधिकृत सामाजिक जनवादी पार्टियों की बहुसंख्या द्वारा अपनी आस्थाओं के साथ स्टुटगार्ट तथा बैसेल कांग्रेसों में पास अपने महत्वपूर्ण प्रस्तावों के साथ लज्जाजनक गद्दारी में सबसे स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है। परन्तु यह पतन, जो अवसरवाद की पूर्ण विजय, सामाजिक जनवादी पार्टियों के राष्ट्रवादी– उदारतावादी मजदूर पार्टियों में रूपांतरण का द्योतक है, दूसरे इंटरनेशनल के पूरे ऐतिहासिक युग का – उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभ के बीच के युग का – परिणाम मात्र है। इस युग की, जो पश्चिम यूरोपीय बुर्जुआ तथा राष्ट्रीय क्रांतियों की निष्पत्ति से समाजवादी क्रांतियों के समारंभ में संक्रमणात्मक युग है, वस्तुगत अवस्थायें अवसरवाद को जन्म देती रहीं और पोषित करती रहीं। इस अवधि में हम कुछ यूरोपीय देशों में मजदूर तथा समाजवादी आंदोलन में फूट देखते हैं, यह दरार मुख्यतया अवसरवादी ढंग की है (ब्रिटेन, इटली, हॉलैण्ड, बुल्गारिया तथा रूस)ऋ दूसरे देशों में उसी ढंग का लंबा और कठोर संघर्ष देखते हैं (जर्मनी, नंस, बेल्जियम, स्वीडन तथा स्विटजरलैण्ड)। महायुद्व द्वारा पैदा किये गये संकट ने सारी आड़ों को नष्ट कर दिया है, सारी परिपाटियों का सफाया कर दिया है, बहुत पहले ही पक चुके फोड़े को चीर दिया है तथा बुर्जुआ वर्ग के साथी की उसकी सही भूमिका में अवसरवाद को बेनकाब कर दिया है। इस तत्व का मजदूरों की पार्टियों से पूर्ण संगठनात्मक संबंध विच्छेद अनिवार्य हो गया है। साम्राज्यवाद का युग क्रांतिकारी सर्वहाराओं के हरावल का और मजदूर वर्ग के अर्धटुटपुंजिया अभिजात तबके का, जो 'अपने' राष्ट्र के 'महाशक्तीय' दर्जे के विशेषाधिकारों के टुकड़ों पर पलता है, एक ही पार्टी के अंदर सह–अस्तित्व को इजाजत नहीं दे सकता। यह पुराना सिद्वान्त कि एक ही पार्टी, 'अतिवादिता' से मुक्त पार्टी के अंदर अवसरवाद 'एक वैध' लक्षण है, अब मजदूरों के साथ जबर्दस्त धोखा, मजदूर आंदोलन की राह में एक बाधा सिद्व हो गया है। बेनकाब अवसरवाद, जिसके प्रति मजदूर जनसाधारण के मन में तुरंत घृणा पैदा होती है, इतना भयावह तथा नुकसानदेह नहीं है, जितना मध्यमार्ग का वह सिद्वान्त, जो अवसरवादी व्यवहार को न्यायसंगत ठहराने के लिए मार्क्सवादी सूत्रों का उपयोग करता है तथा नाना कुतर्कों की मदद से यह सिद्व करने का प्रयत्न करता है कि क्रांतिकारी कार्यवाई असामयिक है, आदि। इस सिद्वान्त के सबसे विख्यात प्रवक्ता और साथ ही दूसरे इंटरनेशनल के विख्यात अधिकारी काउत्स्की ने अपने को परम पाखंडी तथा मार्क्सवाद के साथ अनाचार की कला में मंजा हुआ व्यक्ति सिद्व किया है। ...'' (लेनिन, दूसरे इंटरनेशनल का पतन, संकलित रचनाएं दस खंडों में, मास्को, **1982**, खण्ड–**5**, पृष्ठ–**138–139**)

काउत्स्की के बारे में लेनिन ने यह भी लिखाः

> ''मजदूर वर्ग जब तक इस गद्दारी, ढुलमुल यकीनी, अवसरवाद की गुलामी और मार्क्सवाद के बेमिसाल सैद्वान्तिक विकृतीकरण के खिलाफ निर्मम संघर्ष नहीं चलायेगा, तब तक वह अपनी विश्व क्रांतिकारी भूमिका नहीं अदा कर सकता। काउत्स्कीवाद कोई संयोग की चीज नहीं है, बल्कि दूसरे इंटरनेशनल के अंतर्विरोधों की सामाजिक उपज है, मार्क्सवाद की जबानी वफादारी और अवसरवाद की अमली मातहती के जोड़ की सामाजिक उपज है।'' (लेनिन, समाजवाद और युद्व, वही, पृष्ठ–**170**)

दूसरे इंटरनेशनल के नेताओं की इस गद्दारी के कारण जब युद्व के अंत में विभिन्न देशों में क्रांतियां फूट पड़ी तो इन्होंने क्रांतियों को कुचलने में पूंजीपति वर्ग का साथ दिया। न केवल इन्होंने इन क्रांतियों में मजदूर वर्ग का नेतृत्व नहीं किया बल्कि क्रांतियों को कुचलने में सक्रिय भूमिका निभाई। इसके लिए इन्होंने मजदूर वर्ग में अपनी पहले की साख का इस्तेमाल किया।

इन नेताओं और पार्टियों की इस गद्दारी से आश्वस्त होकर विभिन्न देशों के पूंजीपति वर्ग ने इन्हें क्रमशः अपने राज्य का संचालन करने की जिम्मेदारी सौंप दी। मजदूर वर्ग को धोखा देने का, क्रांति से उसे दूर रखने का काम इनसे बेहतर कोई नहीं कर सकता था। इनके नेतृत्व में विभिन्न देशों में क्रमशः 'कल्याणकारी' राज्य कायम हुए। **1951** में दूसरे इंटरनेशनल की वारिस पार्टियों और समाजवादी इंटरनेशनल ने औपचारिक तौर पर मार्क्सवाद का त्याग कर दिया और खुलेआम सुधार का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया। आधी शताब्दी बाद उन्होंने औपचारिक तौर पर वह घोषित कर दिया जो वास्तव में वे आधी शताब्दी पहले थे।

III

लेनिन ने दूसरे इंटरनेशनल के नेताओं की गद्दारी के खिलाफ न केवल दृढ़तापूर्वक संघर्ष चलाया और इस प्रक्रिया में मार्क्सवाद की हिफाजत करते हुए उसे विकसित किया बल्कि उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय मजदूर आंदोलन को पुनर्गठित करने के लिए तीसरे इंटरनेशनल, कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का गठन भी किया। दूसरे इंटरनेशनल के नेताओं के खिलाफ संघर्ष के समय ही उन्होंने कहा था कि दूसरे इंटरनेशनल को पुनर्जीवित करना मजदूर वर्ग के लिए निरर्थक ही नहीं, घातक है। क्रांतिकारी मार्क्सवादियों को इससे पूर्णतया नाता तोड़ लेना चाहिए और एक नये इंटरनेशनल का गठन करना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा था कि मजदूर पार्टियों को अब सामाजिक–जनवादी नाम को त्याग देना चाहिए क्योंकि यह भ्रष्ट होकर सुधारवाद का प्रतीक बन गया है। उन्हें कम्युनिस्ट पार्टी का नाम ग्रहण करना चाहिए। क्रांति के बाद रूस में बोल्शेविक पार्टी ने यही किया।

तीसरे इंटरनेशनल के गठन ने क्रांतिकारी मार्क्सवादियों को एक केन्द्र के इर्द–गिर्द इकट्ठा करने और उन्हें दिशा–निर्देश देने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके प्रयासों से दुनिया के अनेक देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों का गठन हुआ और एक मजबूत कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन अस्तित्व में आया। जब तक लेनिन जिंदा रहे तब तक लेनिन ने न केवल बोल्शेविक पार्टी बल्कि तीसरे इंटरनेशनल का भी नेतृत्व किया।

लेकिन लेनिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कई नेताओं ने मार्क्सवाद–लेनिनवाद के खिलाफ जिहाद छेड़ दिया। इन्होंने सोवियत पार्टी और इंटरनेशनल दोनों जगह लेनिनवाद के कुछ मूलभूत सिद्वान्तों पर हमला करना शुरू कर दिया। इन लोगों में प्रमुख थे ट्राट्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव व बुखारिन।

ट्राट्स्की एक लम्बे समय तक मेंशेविक रहा था। रूस की सामाजिक–जनवादी मजदूर पार्टी की **1903** की दूसरी कांग्रेस से लेकर **1917** के मध्य तक वह बोल्शेविकों के खिलाफ रहा था। इस पूरे दौर में वह न केवल लेनिन के सांगठनिक सिद्वान्तों का विरोध करता रहा बल्कि रूसी क्रांति की कार्यनीति के संबंध में उसने अपना एक अलग सिद्वान्त पेश किया– 'सतत क्रांति' का सिद्वान्त। उसका नारा था 'जार नहीं, बल्कि मजदूरों का राज्य'। वह सर्वहारा तानाशाही कायम होने के पहले 'मजदूरों–किसानों की जनवादी तानाशाही' के चरण से इंकार करता था। साथ ही वह मानता था कि रूसी क्रांति का तभी कोई भविष्य है जब यूरोप में भी क्रांति हो जाय।

ये सारी बातें लेनिन के विचारों के विरोध में थीं। लेनिन **1915** में ही साम्राज्यवाद के दौर में एक अकेले देश में समाजवाद कायम होने की संभावना को रेखांकित कर चुके थे (यहां यह याद रखना होगा कि ट्राट्स्की ने तभी लेनिन का विरोध किया था)। जब ट्राट्स्की **1917** के मध्य में बोल्शेविक पार्टी में शामिल हुआ तो यह मान लिया गया कि उसने अपने गलत सिद्वान्तों को छोड़ दिया है और बोल्शेविक पार्टी के सिद्वान्तों को अपना लिया है। लेकिन ऐसा था नहीं। वह अपने पुराने सिद्वान्तों को अपनाए रहा। जब तक लेनिन जिंदा थे तब तक वह दबी जुबान से इधर–उधर कुछ संकेत करता था, अलग–अलग मसलों पर लेनिन का विरोध करता था। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद उसने बोल्शेविक पार्टी के खिलाफ समग्र अभियान छेड़ दिया।

उसके अभियान का केन्द्र बिन्दु था एक देश में समाजवाद का निर्माण। लेनिन के स्पष्ट कथन के बावजूद उसने यह साबित करने का प्रयास किया कि मार्क्सवाद और बोल्शेविक पार्टी के सिद्वान्त इसकी इजाजत नहीं देते। उसके अनुसार एक अकेले देश में समाजवाद का निर्माण संभव नहीं था। केवल यूरोप व्यापी क्रांति और यूरोप के पैमाने पर समाजवाद का निर्माण ही रूस में समाजवाद के निर्माण को संभव बनाते थे। इसलिए रूसी क्रांति को सारा जोर यूरोप में क्रांति पर लगाना चाहिए।

ट्राट्स्की की ये बातें लेनिनवाद का ऐसा संशोधन थीं जिनके बाद सोवियत सर्वहारा निरुत्साहित हो जाता और सोवियत क्रांति देशी बुर्जुआ और अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी बुर्जुआ के सामने समर्पण कर देती। यह समर्पणवादी लाइन थी जिसके मूल में था सोवियत सर्वहारा में भरोसे का अभाव। ऊपरी तौर पर वामपंथी लाइन होते हुए भी यह मूलतः देशी–विदेशी बुर्जुआ के सामने समर्पण की दक्षिणपंथी लाइन थी। यदि यह लागू हुई होती तो सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण नहीं हुआ होता और आज सोवियत संघ और विश्व का इतिहास कुछ और होता।

स्टालिन ने लेनिनवाद पर ट्राट्स्की के इस हमले का जवाब दिया और लेनिनवाद की रक्षा की। उन्होंने एक अकेले देश में समाजवाद के निर्माण के लेनिन के सिद्वान्त को पुरजोर तरीके से स्थापित किया और फिर बाद में सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण को व्यावहारिक नेतृत्व प्रदान किया।

सोवियत पार्टी में पराजित होने के बाद भी ट्राट्स्की चुप नहीं बैठा और लगातार षड्यंत्रकारी गतिविधियों में लिप्त रहा। अंततः उसे पार्टी और देश से निकाल दिया गया। देश से बाहर जाकर उसने सोवियत पार्टी और सोवियत समाजवाद विरोधी गतिविधियां जारी रखीं तथा तीसरे इंटरनेशनल के बरक्स अपने चौथे इंटरनेशनल का गठन किया। इस तथाकथित इंटरनेशनल से वह अपने 'सतत क्रांति' के सिद्वान्त का प्रचार करता रहा और एक दिन अपने ही अनुयाई के हाथों मारा गया।

जिनोवियेव–कामेनेव ने भी कुछ अंतराल के बाद 'एक अकेले देश में समाजवाद का निर्माण नहीं हो सकता' का राग छेड़ दिया और ट्राट्स्की के साथ मोर्चा कायम कर लिया। ये दोनों पुराने बोल्शेविक नेताओं में थे और एक लम्बे समय तक लेनिन के सहयोगी रहे थे। लेकिन यह भी तथ्य है कि ये समय समय पर दक्षिणपंथी भटकाव का परिचय देते रहे थे। अप्रैल थीसिस पर बहस के समय कामेनेव ने लेनिन का इस बात के लिए विरोध किया था कि अब समाजवादी क्रांति की ओर बढ़ने का समय आ गया है। कामेनेव ने कहा था कि 'रूस में समाजवाद लागू नहीं किया जा सकता'।

अक्टूबर क्रांति के समय में ये दोनों वे लोग थे जिन्होंने सत्ता पर कब्जा किये जाने का विरोध किया था। न केवल उन्होंने केन्द्रीय समिति के भीतर यह किया बल्कि अपने विरोध को बाहर प्रकाशित कर पार्टी की योजना को शत्रुओं के सामने प्रकट कर दिया। लेनिन ने तब इन्हें पार्टी से निकाले जाने की मांग की थी। सत्ता पर कब्जा हो जाने के बाद भी ये दोनों निरंतर दूसरी पार्टियों से समझौता करने की

वकालत करते रहे। इन्हें सर्वहारा द्वारा सत्ता कब्जा किये जाने में यकीन नहीं था और इसे ये अलग–अलग मौकों पर प्रकट करते रहे। ये लगातार बुर्जुआ वर्ग के सामने समर्पण के पक्षधर बने रहे।

1925 में उन्होंने जब ट्राट्स्की के बाद यह राग अलापना शुरू किया कि सोवियत संघ में, एक अकेले देश में समाजवाद का निर्माण नहीं हो सकता तब वे मूलतः उसी समर्पणवादी रुख से प्रस्थान कर रहे थे। पहले उन्हें सर्वहारा द्वारा सत्ता पर कब्जा किये जाने में यकीन नहीं था, अब समाजवाद के निर्माण में देशी–विदेशी बुर्जुआ के सामने अपने समर्पण को वे सर्वहारा अंतर्राष्ट्रवाद से ढंकने का प्रयास कर रहे थे। 'वामपंथी' लफ्फाजी की आड़ में वे अपनी दक्षिणपंथी लाइन को आगे बढ़ा रहे थे।

ट्राट्स्की की तरह इन्हें भी पराजित करने में स्टालिन को ज्यादा समय नहीं लगा। लेकिन पराजित हो जाने के बाद ये भी चुप नहीं बैठे और अंततः पार्टी से निकाले गये। बाद में वे माफी मांगकर पार्टी में वापस आये तो केवल गुटबाजी करने और तोड़–फोड़ करने के लिए ही। अंत में उनके पापों का घड़ा भर गया और **1936–38** के शुद्विकरण अभियान में वे ठिकाने लगा दिये गये।

लेनिनवाद के खिलाफ इन 'वामपंथी' हमलों के बाद एक और हमला दक्षिणपंथ की तरफ से बुखारिन ने बोला। ट्राट्स्की, जिनोवियेव और कामेनेव के खिलाफ संघर्ष में बुखारिन स्टालिन के साथ रहे थे। लेकिन जब सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण के काम को आगे बढ़ाते हुए खेती के सामूहिकीकरण का सवाल उठा तो बुखारिन ने इसका विरोध किया। वे धनी किसानों, कुलकों के पक्ष में थे और खेती के सामूहिकीकरण के विरोधी थे। उन्होंने कहा कि देहातों में नई आर्थिक नीति को जारी रखा जाना चाहिए।

बुखारिन की यह लाइन सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण की पूरी परियोजना को ही ध्वस्त कर देने वाली थी। यदि देहातों में समाजवाद की ओर नहीं बढ़ा जाता और वहां शोषकों को मिली छूट जारी रहती तो बहुत जल्दी ही समूची सोवियत सत्ता खतरे में पड़ जाती। न केवल समाजवाद के निर्माण में बाधा पड़ती बल्कि स्वयं समाजवादी राज्य का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता।

स्टालिन ने बुखारिन की इस दक्षिणपंथी लाइन को समय रहते चकनाचूर कर दिया और सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण द्रुत गति से आगे बढ़ चला। बुखारिन ने अपनी हार स्वीकार कर ली और वे पार्टी तथा राज्य में महत्वपूर्ण पदों पर बने रहे। लेकिन **1936–38** के मुकदमों में पता चला कि वे भी ट्राट्स्की, जिनोवियेव व कामेनेव के गुट में शामिल हो गये थे। उन्हें भी ठिकाने लगा दिया गया।

लेनिन के मरने के बाद सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण के दौर में लेनिनवाद पर इन हमलों की मूल प्रकृति एक ही थी। देशी और विदेशी पूंजीपति वर्ग के सामने आत्मसमर्पण। इस रूप में इनका सारतत्व भी दूसरे इंटरनेशनल के नेताओं से भिन्न नहीं था। वे भी साम्राज्यवादी बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ मजदूर वर्ग को लामबंद कर क्रांति करने के बदले उसके सामने आत्मसमर्पण कर रहे थे और साम्राज्यवादी बुर्जुआ द्वारा फेंकी गई कुछ जूठन बटोर रहे थे। क्रांति करने का साहस जुटाने के बदले वे पूंजीवादी व्यवस्था की पैबंदसाजी में लगे हुए थे।

सोवियत संघ में बोल्शेविक पार्टी के ये नेता क्रांति के बाद समाजवादी निर्माण के दौर में उसी आचरण का प्रदर्शन कर रहे थे। साहसपूर्वक समाजवादी निर्माण की ओर बढ़ने के बदले ये उससे डर रहे थे और देशी–विदेशी बुर्जुआ के सामने समर्पण करने को तैयार थे। यदि उन्हें स्टालिन से चुनौती नहीं मिलती तो वे सोवियत संघ को पूंजीवाद के रास्ते पर ले गये होते। तब सोवियत संघ में समाजवाद के बदले पूंजीवाद का निर्माण हुआ होता। यह आश्चर्य नहीं कि ख्रुश्चोव से लेकर गोर्बाचोव तक को इनकी इतनी याद आई। गोर्बाचोव ने तो खुले पूंजीवाद की स्थापना की अपनी राह में बुखारिन बगैरह को पुनर्स्थापित भी कर दिया।

ट्राट्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव और बुखारिन वगैरह ऐसे पेटी बुर्जुआ लोग थे जो साम्राज्यवाद के दौर में एक अकेले देश में समाजवाद के निर्माण की चुनौती का सामना नहीं कर सके और बुर्जुआ के सामने समर्पण की बात करने लगे। ऐसा करने के लिए उन्होंने मार्क्सवाद–लेनिनवाद के सिद्वान्तों को तोड़ने–मरोड़ने का प्रयास किया और कई बार अपने को 'वामपंथी' लबादे में पेश किया। लेकिन उनका असली समर्पणवादी चरित्र छिपा नहीं रहा और कठोर संघर्ष में स्टालिन ने उन्हें पराजित कर दिया। स्टालिन ने इस संघर्ष में मार्क्सवाद–लेनिनवाद की रक्षा की।

IV

सोवियत संघ में मार्क्सवाद–लेनिनवाद विरोधियों की पराजय और समाजवाद के निर्माण के बाद अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन ने तेज गति से प्रगति की। विभिन्न देशों में कम्युनिस्ट पार्टियां तेजी से मजबूत हुई। खासकर जब फासीवाद/नाजीवाद विरोधी कार्यभार सामने आया तो इन पार्टियों ने इसमें बढ़–चढ़कर भागीदारी की और नेतृत्व प्रदान किया। औपनिवेशिक–अर्ध औपनिवेशिक देशों में भी कम्युनिस्ट पार्टियों ने राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का नेतृत्व अपने हाथ में लेने का प्रयास किया और कई जगह वे कामयाब भी हुईं।

द्वितीय विश्वयुद्व के दौरान फासीवाद/नाजीवाद विरोधी युद्व में सोवियत संघ की शानदार भूमिका और जीत, यूरोप की कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा लोक जनवादी मोर्चे में नेतृत्वकारी भूमिका और फासीवाद–नाजीवाद के खिलाफ उनके अकूत बलिदान तथा राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों में कम्युनिस्ट पार्टियों की भूमिका के चलते जब द्वितीय विश्व युद्व समाप्त हुआ तो दुनिया के पैमाने पर एक मजबूत कम्युनिस्ट आंदोलन अस्तित्व में आया। न केवल एक समाजवादी खेमा अस्तित्व में आ गया बल्कि फ्रांस, इटली, यूनान से लेकर भारत तक मजबूत कम्युनिस्ट पार्टियां भी। साम्राज्यवाद–पूंजीवाद के दिन गिने–चुने दीखने लगे।

लेकिन ठीक इसी समय जबकि अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के लिए सक कुछ ठीक–ठाक चलता दीख रहा था, इसके भीतर एक गद्दार पैदा हुआ। यह था यूगोस्लाविया का जोसफ ब्राज टीटो।

टीटो ने द्वितीय विश्व युद्व के दौरान फासीवादियों के खिलाफ छापामार युद्व में यूगोस्लाविया की जनता का नेतृत्व किया था। वह यूगोस्लाविया की कम्युनिस्ट पार्टी का नेता था। द्वितीय विश्व युद्व के बाद यूगोस्लाविया में जनता का जनवादी गणराज्य कायम हुआ।

लेकिन बहुत जल्दी ही टीटो और उसके सहयोगियों का राष्ट्रीय, मार्क्सवाद– विरोधी रुझान सामने आने लगा। उन्होंने अल्बानिया को अपने संघ में शामिल करने की कोशिश की। अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में उन्होंने जनवादी और समाजवादी क्रांतियों के मिल जाने का सिद्वान्त प्रचारित किया। भारत में **1948** की शुरुआत में बी टी रणदिवे की लाइन एडवर्ड कार्देल्ज से काफी कुछ प्रभावित थी।

स्टालिन के नेतृत्व में अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन ने टीटो गुट के भटकावों को दुरुस्त करने का पूरा प्रयास किया। लेकिन उसने एक न सुनी। अंत में उसे कम्युनिस्ट विरोधी आचरण के लिए आंदोलन से बाहर कर दिया गया।

1948 में अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन से बाहर होने के बाद टीटो की मार्क्सवाद और समाजवाद विरोधी गतिविधियां तेज हो गई। उसने स्टालिन के नेतृत्व में अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन पर हमला बोल दिया। साम्राज्यवादी तो इसी ताक में थे। वे उसे ले उड़े।

लेकिन यह सब कर सकने लायक बनने के लिए टीटो गुट के लिए आवश्यक था कि वह पहले अपनी पार्टी का 'शुद्वीकरण' करे यानी मार्क्सवादियों –लेनिनवादियों को उसमें से निकाल बाहर करे। और उसने ऐसा किया। **1948** से **1952** की अवधि में उसने **2** लाख से

ज्यादा पार्टी सदस्यों यानी मूल सदस्यों की आधी संख्या को पार्टी से निकाल दिया। उसने तीस हजार से ज्यादा लोगों को गिरफ़्तार कर जेलों मे बन्द कर दिया। इसे उसने कॉमिन्फार्म तत्वों के खिलाफ कार्रवाई कहा। यह सब करने के बाद उसने यूगोस्लाविया की कम्युनिस्ट पार्टी को बदल कर यूगोस्लाव कम्युनिस्ट लीग स्थापित कर दी।

पार्टी से मार्क्सवादियों–लेनिनवादियों की छंटनी के बाद टीटो गुट ने यूगोस्लाविया में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना प्रारंभ कर दी। उसने देहातों में सहकारी खेती के बदले व्यक्तिगत खेती को प्रोत्साहन देना शुरु किया। उद्योगों मे स्व प्रबंधन बढ़ाने के नाम पर उद्योग प्रबंधकों–अधिकारियों को सौंप दिये। निजी सम्पत्ति को तेजी से बढ़ावा दिया गया।

साम्राज्यवादियों के लिए यह बहुत खुशी की बात थी। उन्हें अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में एक घुसपैठिया मिल गया था। उन्होंने उसकी पीठ थपथपाई और उसकी सहायता करनी शुरु कर दी। यूगोस्लाविया खुलेआम उनके एजेन्ट की भूमिका निभाने लगा। साम्राज्यवादी उसका इस्तेमाल अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन पर और तेज हमला करने में करने लगे। स्वयं टीटो गुट तो यह लगातार कर ही रहा था। एक रूप में यह द्वितीय विश्व युद्व के बाद कम्युनिस्ट आंदोलन के खिलाफ साम्राज्यवादियों की पहली बड़ी सफलता थी।

चूंकि टीटो गुट यूगोस्लाविया में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना कर रहा था और वह स्टालिन के नेतृत्व वाले समूचे अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन का विरोध कर रहा था इसलिए उसने ढेरों मार्क्सवाद–लेनिनवाद विरोधी सिद्वान्त प्रतिपादित किये। इन बोगस सिद्वान्तों को साम्राज्यवादियों ने सारी दुनिया में प्रचारित किया। मजदूरों के स्वशासन और गुट निरपेक्षता से लेकर टीटो ने अनेक ऐसे सिद्वान्त प्रस्तुत किये जिन्हें बाद में ख्रुश्चोव ने प्रचारित किया। एक रूप में टीटो ख्रुश्चोव का गुरु था। यह यूं ही नहीं था कि सोवियत पार्टी के शीर्ष पर काबिज होने के बाद ख्रुश्चोव ने पहला काम टीटो गुट से संबंध बहाल करने का किया। तब से लेकर अपने मरने तक वह टीटो को कम्युनिस्ट और यूगोस्लाविया का समाजवादी देश मानता रहा।

यूगोस्लाविया पहला समाजवादी देश था जहां के नेतृत्व ने मार्क्सवाद से गद्दारी की थी और अपने यहां पूंजीवाद की पुनर्स्थापना कर दी थी। यह अभूतपूर्व परिघटना थी। लेकिन जैसे–जैसे समय बीता सब कुछ स्पष्ट होता गया। खासकर जब ख्रुश्चोव गुट के सत्तानशीन होने पर सोवियत संघ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो गई तब इस परिघटना के सारे आयाम उजागर हो गये।

'महान बहस' में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने यूगोस्लाविया और टीटो गुट के बारे में यह निष्कर्ष निकाला :

> ''यूगोस्लाविया में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना से अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन को एक नया सबक मिला है। यह सबक हमें बताता है कि जब मजदूर वर्ग सत्ता हथिया लेता है, तब भी पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच संघर्ष जारी रहता है, पूंजीवादी और समाजवादी इन दोनों रास्तों के बीच विजय का संघर्ष जारी रहता है तथा यह खतरा बना रहता है कि कहीं पूंजीवाद की पुनर्स्थापना न हो जाय। यूगोस्लाविया पूंजीवाद की पुनर्स्थापना का प्रतिनिधि उदाहरण प्रस्तुत करता है।
>
> '' यह सबक हमें बताता है कि मजदूर वर्ग की पार्टी का न सिर्पफ सत्ता हथियाने से पहले श्रमिक अभिजात वर्ग के नियंत्रण में हो जाना, पतित होकर पूंजीवादी पार्टी बन जाना तथा साम्राज्यवाद का चाकर बन जाना संभव है, बल्कि सत्ता हथियाने के बाद भी उसका नये पूंजीवादी तत्वों के नियंत्रण में हो जाना, पतित होकर पूंजीवादी पार्टी बन जाना तथा साम्राज्यवाद का चाकर बन जाना संभव है। यूगोस्लाव कम्युनिस्ट लीग ऐसे पतन का प्रतिनिधित्व करती है।
>
> '' यह सबक हमें बताता है कि किसी समाजवादी देश में पूंजीवाद की पुर्नस्थापना प्रतिक्रांतिकारी राज्य विप्लव या साम्राज्यवाद के सशस्त्र आक्रमण के जरिये होना ही अनिवार्य नहीं है, तथा यह उस देश के नेता गुट के पतन के जरिये भी हो सकता है। किसी किले पर कब्जा करने का सबसे आसान तरीका भीतर से कब्जा करना है। यूगोस्लाविया इस बात का प्रतिनिधि उदाहरण है।
>
> '' यह सबक हमें बताता है कि संशोधनवाद साम्राज्यवादी नीति की उपज है। पुराना संशोधनवाद श्रमिक अभिजात वर्ग को खरीदने और पालने–पोसने की साम्राज्यवादी नीति के परिणाम स्वरूप पैदा हुआ था। आधुनिक संशोधनवाद भी उसी तरह पैदा हुआ है। कोई भी कीमत चुकाने के लिए तैयार साम्राज्यवाद ने अब अपनी कार्रवाइयों का दायरा बढ़ा दिया है और वह समाजवादी देशों के नेता ग्रुपों को खरीद रहा है तथा उनके जरिये अपनी 'शांतिपूर्ण विकास' की वांछित नीति पर अमल कर रहा है। अमरीकी साम्राज्यवाद यूगोस्लाविया को 'अगुवा भेड़' समझता है, क्योंकि उसने इस सिलसिले में एक मिसाल कायम की है।''
> (महान बहस, अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन, **1998**, पृष्ठ.**140–141**)

V

अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन और मार्क्सवाद–लेनिनवाद पर टीटो गुट का हमला उसके सामने कुछ भी नहीं था जो ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी के नेतृत्व में होने वाला था। ख्रुश्चोव एक ऐसा गद्दार था जो रेंगकर सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी में काफी ऊपर पहुंच गया था और स्टालिन के मरने के बाद उसके शीर्ष पर जा पहुंचा।

जब तक स्टालिन जिन्दा थे तब तक वह उनके कसीदे गढ़ता रहा। **1949** में स्टालिन के सत्तरवें जन्म दिन के मौके पर उसने उन्हें 'हमारे पिता' कहा था। लेकिन वह तो पितृ हंताओं की परंपरा का था और केवल स्टालिन के मरने का इंतजार कर रहा था।

स्टालिन के मरते ही उसने बेरिया और मालेनकोव की मदद से सत्ता पर कब्जा कर लिया और एक–एक कर बेरिया और मालेनकोव को किनारे लगा दिया। उसने हजारों कम्युनिस्टों को पार्टी से बाहर करवा दिया और उन्हें जेल में ठूंस दिया। यह सब करके जब उसने सत्ता और पार्टी पर अपनी पकड़ मजबूत बना ली तो फिर उसने मार्क्सवाद–लेनिनवाद पर हमला किया। जैसा कि पहले कहा गया है उसने इसकी पूर्व पीठिका के तौर पर टीटो गुट से संबंध बहाल कर लिए थे। वह इन गद्दारों से काफी कुछ सीख रहा था।

मार्क्सवाद–लेनिनवाद पर हमला करने के लिए ख्रुश्चोव ने स्टालिन को माध्यम बनाया, उसी स्टालिन को जिन्हें उसने सात साल पहले पिता कहा था। लेनिन के मरने के बाद से ही स्टालिन न केवल सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के नेता थे बल्कि वे समूचे विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के भी नेता थे। उन्हीं के नेतृत्व में सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण किया गया था द्वितीय विश्व युद्व में फासीवादियों/नाजीवादियों को पराजित किया गया था। और युद्वोपरांत एक समाजवादी खेमा अस्तित्व में आया था। अपने जिन्दा रहते स्टालिन ने मार्क्सवाद–लेनिनवाद की इंच–इंच हिफाजत की थी। इस सबके कारण वे अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के प्रतीक पुरुष बन गये थे। उन पर हमला मार्क्सवाद–लेनिनवाद पर और अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के पिछले तीन दशकों के इतिहास पर हमला था। और मार्क्सवाद–लेनिनवाद और अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन पर हमला करने के लिए उसने ठीक स्टालिन को चुना। उसने सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की फरवरी **1956** में हुयी बीसवीं कांग्रेस में स्टालिन पर हमला बोल दिया।

लेकिन अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के प्रतीक पुरुष स्टालिन पर हमला करना इतना आसान नहीं था। सोवियत पार्टी में ''शुद्वीकरण'' और उस पर अपनी सारी पकड़ के बावजूद अभी भी सोवियत पार्टी इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी। उसने ख्रुश्चोव को स्टालिन पर हमला करने की इजाजत देने से इंकार कर दिया। तब ख्रुश्चोव ने पार्टी में अपने पद के अधिकार का इस्तेमाल करने की धमकी दी और अंत में कांग्रेस के समापन के समय एक गुप्त और बंद सत्र में उसने स्टालिन पर हमले वाला अपना कुख्यात भाषण दिया।

यह भाषण और कुछ नहीं झूठ–फरेब और जहर का पुलिंदा था। इसमें उन्हीं बातों को दोहराया गया था जिसे सोवियत पार्टी के गद्दार और साम्राज्यवादी बीसियों सालों से कहते आये थे। ये सब कम्युनिज्म के विरुद्व विश्व साम्राज्यवाद के प्रचार का हिस्सा थे। लेकिन तब दुनिया भर के कम्युनिस्टों और क्रांतिकारियों ने इन पर जरा भी ध्यान नहीं दिया था। अब उन्हीं बातों को सोवियत पार्टी का नेता पार्टी के सबसे बड़े मंच यानी कांग्रेस से दुहरा रहा था। साम्राज्यवादियों ने विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन में अपना सबसे बड़ा और प्रभावी एजेन्ट हासिल कर लिया था।

ख्रुश्चोव ने आरोप लगाया कि स्टालिन तानाशाह थे, उन्होंने पार्टी और देश में जनवाद का गला घोंट दिया था, उन्होंने विरोधियों को बिना आगा–पीछा देखे मरवा दिया था, उन्होंने करोड़ों किसानों को मौत के मुंह में धकेल दिया था, उन्होंने लाखों मासूम लोगों को मरवा दिया था या यातना गृहों में डाल दिया था, उनका शासन भयानक इवान के शासन से भी बुरा था, कि उनके जमाने में कोई भी सुरक्षित नहीं था इत्यादि। महत्वपूर्ण बात यह है कि पचासों पृष्ठ के इस भाषण में उसने स्टालिन की लाइन की कोई समीक्षा नहीं की, उनकी किसी सैद्वान्तिक प्रस्थापना को नहीं छुआ।

स्टालिन पर ख्रुश्चोव के इस हमले से जहां सोवियत पार्टी, सोवियत जनता सकते में थी वहीं साम्राज्यवादियों की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने
ख्रुश्चोव के भाषण की लाखों प्रतियां रातों–रात सारी दुनिया में प्रसारित कर दीं। विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन स्तब्ध रह गया। पिछले चार दशकों में सारे साम्राज्यवादी मिलकर जो नहीं कर पाये वह ख्रुश्चोव ने कर दिखाया।

लेकिन ख्रुश्चोव की ओर से तो यह शुरुआत भर थी। उसे तो अभी बहुत आगे जाना था। ठीक बीसवीं कांग्रेस में ही उसने अपने तीन 'शातिपूर्ण' का कुख्यात संशोधनवादी सिद्वान्त चुपके से पेश कर दिया था– शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व, शांतिपूर्ण प्रतियोगिता और शांतिपूर्ण संक्रमण। बाद में उसने इन्हें पुष्पित–पल्लवित किया।

उसने कहा कि द्वितीय विश्व युद्व के बाद दुनिया में मूलभूत परिवर्तन आ गया है। एक ओर मजबूत समाजवादी खेमा अस्तित्व में आ गया है तो दूसरी ओर अनेक गुलाम देश आजाद हो गये हैं। औपनिवेशिक व्यवस्था चकनाचूर हो गयी है। साम्राज्यवाद कमजोर हो गया है और पीछे हट गया है।

दूसरी ओर परमाणु बमों के आविष्कार के चलते युद्व का चरित्र अब बदल गया है। परमाणु बमों के चलते पूरी मानवता के विनाश का खतरा पैदा हो गया है। इसलिए जरूरी है कि किसी भी कीमत पर परमाणु युद्व को रोका जाय। इसके लिए आवश्यक है कि साम्राज्यवादियों को भड़काने से बचा जाय।

ऐसे में जरूरी है कि समाजवादी देश साम्राज्यवादी देशों के साथ शांतिपूर्ण सहअस्तित्व कायम करें और उनके साथ शांतिपूर्ण प्रतियोगिता में उतरें। चूंकि समाजवाद पूंजीवाद से श्रेष्ठ व्यवस्था है इसलिए शांतिपूर्ण प्रतियोगिता में उसकी श्रेष्ठता स्थापित हो जायेगी। पूंजीवादी देशों की मजदूर और मेहनतकश जनता इसे देखेगी और समाजवाद की ओर अग्रसर होगी। साम्राज्यवाद चूंकि कमजोर हो गया है इसलिए वह समाजवाद की ओर इस गति को नहीं रोक पायेगा। मजदूर–मेहनतकश जनता शांतिपूर्ण तरीके से समाजवाद में प्रवेश कर जायेगी। पूंजीवादी देशों के मजदूर वर्ग के लिए समाजवाद में शांतिपूर्ण संक्रमण का रास्ता खुल गया है। उन्हें क्रांति करने की जरूरत नहीं। नव आजाद देशों के लिए उसने कहा कि उनके सामने विकास का गैर–पूंजीवादी रास्ता उपलब्ध है। यानी इन देशों का पूंजीपति वर्ग समाजवाद की ओर जा सकता है (भारत का नेहरू) और यहां की कम्युनिस्ट पार्टियों का काम है इस काम में पूंजीपति वर्ग का सहयोग करना।

ख्रुश्चोव के ये शांतिपूर्ण सिद्वान्त मार्क्सवाद–लेनिनवाद का पूर्ण संशोधन थे। बाद में उसके द्वारा प्रस्तुत ''समूची जनता की पार्टी'' और ''समूची जनता का राज्य'' को मिलाकर ये नये संशोधनवादियों का मुकम्मल सिद्वान्त बन जाते थे। इनके द्वारा ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी ने राज्य, क्रांति, पार्टी, सर्वहारा अधिनायकत्व, जनवाद, युद्व और शांति, समाजवाद, साम्राज्यवाद इत्यादि सभी प्रश्नों पर मार्क्सवाद–लेनिनवाद में संशोधन कर डाला। यह मार्क्सवाद–लेनिनवाद में उसी पैमाने का संशोधन था जैसा कि दूसरे इंटरनेशनल के बर्नस्टीन–काउत्स्की जैसे नेताओं ने मार्क्सवाद में किया था। और ठीक उस समय की तरह ज्यादातर कम्युनिस्ट पार्टियों का ज्यादातर हिस्सा इन संशोधनवादी सिद्वान्तों के पीछे चल पड़ा।

मार्क्सवाद–लेनिनवाद के इस परित्याग के साथ ही ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी ने सोवियत संघ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना कर दी। उन्होंने एक–एक कर वे कदम उठाने शुरु कर दिये जो निजी सम्पत्ति, माल और मुनाफे के प्रसार को बढ़ाने की ओर ले जाते थे। **1964–65** में ख्रुश्चोव के उत्तराधिकारी ब्रेझनेव–कोसिगिन के सुधारों के साथ यह प्रक्रिया पूरी हो गयी।

लेकिन मार्क्सवाद–लेनिनवाद पर ख्रुश्चोव एण्ड कम्पनी के इस हमले को अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन से चुनौती मिलनी ही थी और वह मिली। माओ के नेतृत्व में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी को जवाब दिया। अनवर होजा के नेतृत्व में अल्बानिया की लेबर पार्टी इनके साथ थे। और साथ में थे दुनिया के तमाम सच्चे कम्युनिस्ट।

माओ ने न केवल ख्रुश्चोव के संशोधनवादी विचारों का खंडन किया बल्कि वे इस सवाल से भी जूझे कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी में ख्रुश्चोव जैसे लोग क्यों पैदा हुए? इसके पहले यूगोस्लाविया का उदाहरण उनके सामने था। समाजवादी समाज में पूंजीवादी पुनर्स्थापना का क्या कारण था और उसकी रोकथाम कैसे की जा सकती है? ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी के साथ 'महान बहस' चलाते हुए माओ इन सवालों से टकराये और इस प्रक्रिया में उन्होंने न केवल मार्क्सवाद–लेनिनवाद की रक्षा की बल्कि उसे विकसित भी किया। समाजवादी समाज में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के कारणों की जांच–पड़ताल और उसके रोकने के लिए महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की अवधारणा ने मार्क्सवाद–लेनिनवाद को एक नई ऊंचाई तक, मार्क्सवाद– लेनिनवाद–माओ विचारधारा तक पहुंचा दिया। संशोधनवादियों से जूझते हुए माओ ने मार्क्सवाद–लेनिनवाद में सृजनात्मक विकास किया और उसे एक ऊंचे धरातल पर पहुंचा दिया। जैसे लेनिन ने दूसरे इंटरनेशनल के संशोधनवादियों से जूझते हुए मार्क्सवाद का विकास किया था वैसे ही माओ ने इन आधुनिक संशोधनवादियों से जूझते हुए मार्क्सवाद–लेनिनवाद का विकास किया। मार्क्सवाद पर इतने व्यापक हमले ने उसमें इतने ऊंचे विकास को प्रेरित किया।

यहां यह द्रष्टव्य है कि ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी से जूझने के साथ ही वे अपने देश में, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी में घुसे हुए संशोधनवादियों से भी जूझ रहे थे। वे ख्रुश्चोव के साथ–साथ चीनी ख्रुश्चोव यानी ल्यू शाओ ची और डेंग स्याओ पिंग से भी टकरा रहे थे। वे चीन में पूंजीवादी पुनर्स्थापना की कोशिशों के खिलाफ भी लड़ रहे थे। ख्रुश्चोव के नेतृत्व वाले अंतर्राष्ट्रीय संशोधनवाद की शाखाएं ल्यू शाओ ची, डेंग स्याओ पिंग और पेंग ती हुई इत्यादि के रूप में चीन तक फैली हुई थीं।

माओ ने बताया कि समाजवाद की स्थापना के बाद भी समाजवादी समाज में वर्ग और वर्ग संघर्ष बने रहते हैं। उत्पादन के साधनों में निजी सम्पत्ति के खात्मे के बाद भी माल–मुद्रा का चलन बना रहता है और ''हरेक से क्षमतानुसार और हरेक को कार्य के अनुसार'' का बुर्जुआ अधिकार बना रहता है। शारीरिक और मानसिक श्रम, शहर और देहात तथा कृषि और उद्योग का फर्क बना रहता है। ये नये–नये बुर्जुआ तत्वों को जन्म देते रहते हैं। इसके अलावा पुराने विचार और आदतें बनी रहती हैं। ये सब मिलकर पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए आधार का काम करते हैं। समाज में नये–नये पूंजीवादी तत्व पैदा होते रहते हैं और ये कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर भी अभिव्यक्त होते हैं। जब

पार्टी के शीर्ष पदों पर बैठे लोग पूंजीवादी विचारों पर चलने लगते हैं तो पूंजीवाद की पुनर्स्थापना का खतरा बढ़ जाता है। इसकी रोकथाम के लिए जरूरी है कि आर्थिक आधार में पुनर्स्थापना के कारकों को लगातार कमजोर किया जाय। लेकिन इसके साथ ही जरूरी है कि लोगों के विश्व दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाय जिससे वे किसी भी नई समस्या के पैदा होने पर सर्वहारा नीति पर चलें। इसके लिए पूरी अधिरचना में क्रांति जरूरी है। पार्टी नेताओं से लेकर सारी जनता के विचारों का क्रांतिकारीकरण जरूरी है जिससे वे विरासत में मिले निजी सम्पत्ति के दृष्टिकोण से मुक्त हो सकें। इस बीच पार्टी और राज्य में बैठे उन लोगों से भी निपटना जरूरी है जो इस सबके विरोधी हैं और पूंजीवादी रास्ते पर चल रहे हैं। उन्हें उनके पदों से हटाना जरूरी होगा नहीं तो वे पूरे समाज को ही पूंजीवादी दिशा में ले जायेंगे। इसीलिए यह सांस्कृतिक क्रांति साथ ही राजनीतिक क्रांति भी है। ऐसी अनेक सांस्कृतिक क्रांतियों से गुजरते हुए समाजवादी समाज अंततः कम्युनिज्म तक पहुंचेगा। तब तक सर्वहारा की तानाशाही को कायम रखना होगा, उसे मजबूत बनाना होगा और उसके तहत क्रांति को जारी रखना होगा।

मार्क्सवाद–लेनिनवाद में माओ का यह नया और अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान था। अब मार्क्सवादी वह नहीं था जो केवल सर्वहारा की तानाशाही को स्वीकार करता है बल्कि वह था जो इसके साथ समाजवाद में सर्वहारा की तानाशाही के अंतर्गत क्रांति को जारी रखने को स्वीकार करता हो। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का सारतत्व यही था।

जैसा कि माओ ने बताया ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी समाजवादी समाज में पैदा हुए नये पूंजीवादी तत्व थे। ये पार्टी, राज्य और प्रबंधन में काबिज ऊपरी हिस्से के लोग थे। ये इन समाजों के विशेषाधिकार सम्पन्न लोग थे। ये इस बात की अभिव्यक्ति थे कि निजी सम्पत्ति को औपचारिक तौर पर तो सामूहिक बना दिया गया है लेकिन अभी वह वास्तव में सारी जनता की सम्पत्ति नहीं बनी है। अभी कुछ लोग उसकी ओर से उसका प्रबंधन कर रहे हैं। ये लोग बड़ी आसानी से मात्र प्रबंधन से शोषण तक पहुंच सकते हैं। और ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी अपने पूंजीवादी रूपांतरण के बाद यही करने लगे। वे मजदूर वर्ग के नुमाइंदों के बदले पूंजीपति वर्ग के नुमांइंदे और स्वयं पूंजीपति बन गये। वे मजदूर वर्ग का बेशी श्रम हड़पने लगे और पूरे समाज का पूंजीवादीकरण करने लगे।

पार्टी और राज्य में सत्तानशीन ये मुट्ठी भर विशेषाधिकार संपन्न लोग जब पूंजीवादी रास्ते पर चल पड़े तो साम्राज्यवादियों की भाषा बोलना, साम्राज्यवादियों के सामने समर्पण करना उनके लिए स्वाभाविक था। उनका साम्राज्यवादियों का एजेन्ट बन जाना भी स्वाभाविक था क्योंकि इससे पूंजीवादी पुनर्स्थापना के उनके उद्देश्यों की पूर्ति होती थी। अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में फूट डालना, उसे ध्वस्त करना, संशोधनवादी सिद्वान्तों के जरिये उसे भ्रष्ट करना, क्रांतिकारी आंदोलनों से गद्दारी करना सब उनके हित में था। वक्त के साथ जब सोवियत संघ साम्राज्यवादी बन गया, सामाजिक साम्राज्यवादी, तो उसका साम्राज्यवादियों के साथ प्रतियोगिता में उतरना भी स्वाभाविक था।

जब **1980** के दशक में सोवियत संघ में गोर्बाचोव का अवतरण हुआ तब तक संशोधनवादी पूर्णतया दिवालिया हो चुके थे। गोर्बाचोव ने खुले पूंजीवाद की स्थापना करके मामले को संभालना चाहा लेकिन वह सोवियत समाज के अंतर्विरोधों द्वारा ध्वस्त कर दिया गया। ख्रुश्चोव–ब्रेझनेव–गोर्बाचोव से होते हुए संशोधनवाद की यात्रा पूरी हो गई और **1990** के दशक में सोवियत संघ में खुले पूंजीवाद की स्थापना हो गई। स्वयं सोवियत संघ बिखर गया।

VI

जैसा कि पहले कहा गया है, ख्रुश्चोव द्वारा मार्क्सवाद–लेनिनवाद पर हमले के समय दुनिया की ज्यादातर कम्युनिस्ट पार्टियों का ज्यादातर हिस्सा उसके साथ हो गया। केवल चीन और अल्बानिया की पार्टी ने उसका दृढ़तापूर्वक विरोध किया। रुमानिया, उत्तरी कोरिया, वियतनाम, इंडोनेशिया की पार्टी ने ढुलमुल, बीच की अवस्थिति ली। पूर्वी यूरोपीय देशों की पार्टियां सोवियत पार्टी पर बहुत ज्यादा निर्भर थीं और उन्होंने ख्रुश्चोव का साथ दिया। इससे ख्रुश्चोव को अपने संशोधनवादी विचारों को प्रसारित करने में बहुत मदद मिली।

पश्चिमी यूरोप की मजबूत और व्यापक जनाधार वाली कम्युनिस्ट पार्टियों, ऋंस और इटली की कम्युनिस्ट पार्टियों ने भी ख्रुश्चोव का अनुसरण किया। उन्होंने तत्परता से ख्रुश्चोव के संशोधनवादी विचारों को अपना लिया।

लेकिन इनके द्वारा ख्रुश्चोव के संशोधनवादी विचारों के अपनाये जाने के अपने कारण थे। ये उस तरह सोवियत पार्टी पर निर्भर पार्टियां नहीं थीं, जैसे पूर्वी यूरोप की पार्टियां। इनका अवसरवादी व्यवहार भी ख्रुश्चोव के संशोधनवाद से बहुत पहले प्रकट हो चुका था।

1960 के दशक से और खासकर **1970** के दशक से इन पार्टियों ने अपना एक खास किस्म का संशोधनवाद प्रचारित करना शुरू किया जिसे बाद में यूरो–कम्युनिज्म का नाम दिया गया। यह ख्रुश्चोवी संशोधनवाद का एक नया संस्करण था।

1964 में सोवियत संघ में ख्रुश्चोव के पतन के बाद वहां ब्रेझनेव और कोसिगिन सत्तारूढ़ हुए। उन्होंने ख्रुश्चोव के पश्चिमी साम्राज्यवाद के सामने घुटने टेकने की नीति के बदले उससे दुनिया भर में प्रतियोगिता करने की नीति पर चलना शुरू किया। साथ ही देश के भीतर भी उन्होंने अपने शासन तंत्र का शिंकजा कसा। उन्होंने सोवियत संघ में बुर्जुआ तानाशाही का सामाजिक फासीवादी तंत्र कायम किया।

ऋंस, इटली और स्पेन की कम्युनिस्ट पार्टियों ने ब्रेझनेव–कोसिगिन मॉडल से अपनी थोड़ी दूरी बनाई और अपना संशोधनवादी सिद्वान्त प्रचारित करना शुरू किया। उन्होंने कहा कि इन साम्राज्यवादी देशों में कायम बुर्जुआ जनतंत्र का इस्तेमाल करके समाजवाद कायम किया जा सकता है। उन्होंने इन देशों में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को समाजवादी उद्यम का दर्जा दिया और कहा कि इनके कारण एकाधिकारी पूंजीवाद कमजोर हो रहा है और वे समाजवाद की ओर बढ़ रहे हैं। उन्होंने खुलेआम कहा कि इन देशों में कायम बुर्जुआ संविधान समाजवाद की ओर बढ़ने का रास्ता प्रदान करते हैं। इन्होंने सर्वहारा तानाशाही को सिरे से नकार दिया और स्टालिन को उससे भी ज्यादा कोसने लगे जितना ख्रुश्चोव ने कोसा था। उन्होंने लेनिनवादी कम्युनिस्ट पार्टी की धारणा को भी नकार दिया और कम्युनिस्ट पार्टी को सामाजिक– जनवादी पार्टियों के स्तर पर उतार लाये।

इन्होंने कहा कि परम्परागत मार्क्सवादी अर्थों में अब सर्वहारा नहीं रह गया है। अब मजदूर वर्ग, बुद्विजीवियों और पूंजीपति वर्ग में भेद नहीं रह गया है। ये सब लोग मजदूर बन गये हैं केवल थोड़े से पूंजीपति इनसे अलग और ऊपर हैं (एकाधिकारी पूंजीपति) मजदूर वर्ग में इस परिवर्तन के कारण अब इन सबका समाजवाद की ओर जाने में हित बनता है और यह वर्तमान संविधान के दायरे में हो सकता है। वर्ग संघर्ष खत्म हो गया है। आज का संविधान और राज्य सबका है और बुर्जुआ जनवाद राज्य का सर्वोच्च रूप है, समाजवाद के लिए सबसे अच्छा रूप। क्रांति और सर्वहारा तानाशाही अब बीते जमाने की चीज हो गई हैं। अब कायम होने वाले समाजवाद राष्ट्रीय समाजवाद होंगे–ऋंसीसी समाजवाद, इतालवी समाजवाद, स्पेनी समाजवाद इत्यादि। इस समाजवाद में निजी सम्पत्ति भी रहेगी और सार्वजनिक भी। माल–मुद्रा और मुनाफा भी रहेंगे। योजना और बाजार दोनों रहेंगे।

इनका रास्ता दूसरे और तीसरे इंटरनेशनल खेमों से भिन्न एक तीसरा रास्ता होगा। ये न तो **1917** की अक्टूबर क्रांति के बोल्शेविक रास्ते पर चलेंगे और न सामाजिक जनवादी पार्टियों के रास्ते पर।

मार्क्सवाद–लेनिनवाद संज्ञा अब मार्क्सवाद को अभिव्यक्त करने के लिए उचित नहीं रह गयी है। अब इसका इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। अब कम्युनिस्ट पार्टियों को जनवादी समाजवाद की बात करनी चाहिए। पार्टी सदस्यता के लिए मार्क्सवादी–लेनिनवादी विचारधारा, दर्शन की स्वीकृति जरूरी नहीं है।

1970 के दशक में फ्रांस की कम्युनिस्ट पार्टी के मार्शाई, इटली की कम्युनिस्ट–पार्टी के बर्लिंगे और स्पेन की कम्युनिस्ट पार्टी के कैरिल्लो इस ''यूरो कम्युनिज्म'' के प्रमुख प्रवक्ता थे।

यह तथाकथित यूरो–कम्युनिज्म इन देशों की संशोधनवादी कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा अपने समाज के बुर्जुआ वर्ग के अनुरूप खुद को और ज्यादा ढालना था। यह अपने को उस स्तर पर उतारना था जहां इन देशों का पूंजीपति वर्ग शासन सत्ता चलाने के मामले में इनमें और सामाजिक–जनवादी पार्टियों में फर्क न करे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि इटली की कम्युनिस्ट पार्टी ने **1991** के बाद अपना नाम बदल कर पार्टी ऑफ डेमोक्रेटिक सोशलिज्म रख लिया।

यूरोप की ये पार्टियां तीसरे इंटरनेशनल के शुरुआती दिनों में गठित हुई थीं लेकिन इन्होंने व्यापक आधार द्वितीय विश्व युद्व के जमाने में हासिल किया। द्वितीय विश्व युद्व के दौरान इन सभी देशों में फासीवाद/ नाजीवाद के विरुद्व लोक जनवादी मोर्चा बना था। इस मोर्चे को बनाने में कम्युनिस्ट पार्टियों ने पहलकदमी ली थी और उन्होंने ही इनका नेतृत्व भी किया था। इस मोर्चे के नेतृत्व में चले छापामार युद्वों में कम्युनिस्टों ने बढ़–चढ़कर भागीदारी की थी और सबसे ज्यादा बलिदान भी किया था। युद्व के दौरान अपनी युद्व पूर्व की लगभग सारी सदस्यता खो देने (शहादत में) के कारण फ्रांस की कम्युनिस्ट पार्टी को जनता में प्यार से पार्टी ऑफ डेड कहा जाता था।

फासीवाद/नाजीवाद विरोधी कार्यभार के कारण लोक जनवादी मोर्चे ने अपनी ओर व्यापक लोगों को आकर्षित किया। यह इसकी सफलता थी। यह कम्युनिस्टों की सफलता थी। लेकिन पार्टी के इसी तात्कालिक जनवादी कार्यभार के कारण बहुत सारे ऐसे लोग भी कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुए जो वास्तव में जनवादी थे, कम्युनिस्ट नहीं। यह और भी ज्यादा इसलिए हुआ कि फासीवाद/नाजीवाद से लड़ने के लिए और इनसे देश की रक्षा के लिए कोई सुसंगत बुर्जुआ पार्टी मौजूद नहीं थी। बुर्जुआ पार्टियों ने फासीवाद/नाजीवाद के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था।

इस तरह इन पार्टियों ने व्यापक जनाधार तो हासिल किया लेकिन इनमें कम्युनिस्टों के साथ–साथ जनवादी तत्वों की भरमार हो गई। जब विश्व युद्व समाप्त होने पर समाजवादी क्रांति का कार्यभार सामने उपस्थित हुआ तो ये तत्व पीछे हटने लगे और ये पार्टियां ढुलमुल हो गईं। युद्वोपरांत सबसे बड़ी पार्टियां होने के बावजूद इटली और फ्रांस की कम्युनिस्ट पार्टियां क्रांतियां नहीं कर सकीं, उन्होंने अपने को बुर्जुआ वर्ग द्वारा छला जाने दिया। इन देशों में अस्थिर स्थिति से फायदा उठाने के बदले इन्होंने पूंजीवादी व्यवस्था को स्थायित्व ग्रहण करने दिया।

स्थायित्व हासिल करने के बाद इन देशों में अपेक्षाकृत समृद्वि का लंबा दौर शुरू हुआ– 'कल्याणकारी राज्य' का दौर। इससे मजदूरों के अभिजात हिस्से में और ज्यादा सुस्ती पैदा हुई। क्रांति करने की इन पार्टियों की क्षमता और ज्यादा क्षीण हो गयी। इनमें सुधारवादी प्रवृत्तियां और ज्यादा मुखर हो गईं। जब ख्रुश्चोव रंगमंच पर आया तो ये पार्टियां उसके संशोधनवादी विचारों को ग्रहण करने के लिए पहले ही परिपक्व हो चुकी थीं। उसके नेता इस तरह के विचारों को यदा–कदा अभिव्यक्त भी कर रहे थे।

इस तरह इन पार्टियों के पतन के बीज खुद द्वितीय विश्व युद्व के दौरान इनके विकास में ही मौजूद थे। युद्वोत्तर समृद्वि ने इन्हें फलने–फूलने का मौका दिया। लेकिन यह अनिवार्य नहीं था। माओ की तरह का ज्यादा परिपक्व नेतृत्व इन पार्टियों को समाजवादी क्रांति की ओर ले जा सकता था। इसी तरह यदि अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में संशोधनवाद हावी नहीं हुआ होता तो इनका इतनी तेजी से पतन नहीं हुआ होता। तब शायद **1960** के दशक के क्रांतिकारी उफान में इनकी भिन्न भूमिका रही होती।

बहरहाल, जो हुआ वह हमारे सामने है। आज इन पार्टियों का ''यूरो कम्युनिज्म'' का लबादा भी उतर चुका है और वे बुर्जुआ पार्टियों की दुमछल्ला भर बन कर रह गई हैं।

VII

चीन में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का निशाना वे लोग थे जो पार्टी और राज्य में महत्वपूर्ण पदों पर थे और पूंजीवादी रास्ता अपना रहे थे। ल्यू शाओ ची और डेंग स्याओ पिंग इनमें प्रमुख थे। ल्यू देश का राष्ट्रपति था तो डेंग पार्टी का महासचिव ।

ल्यू शाओ ची और डेंग स्याओ पिंग चीन में नव जनवादी क्रांति की विजय के बाद से ही पूंजीवादी रास्ते पर जाने का प्रयास कर रहे थे। पहले उन्होंने उद्यमों को ज्यादा छूट देने और नवजनवादी क्रांति के काल को ज्यादा लम्बे समय तक खींचने की वकालत की। इसके बाद जब चीन में समाजवाद कायम हो गया तो उन्होंने उत्पादक शक्तियों को विकसित करने पर जोर देने की बात की। उन्होंने कहा कि समाजवाद की स्थापना के बाद अब उत्पादन संबंध तो आगे बढ़ गये हैं लेकिन उत्पादक शक्तियां पिछड़ी रह गई हैं। इसलिए जोर उत्पादक शक्तियों के विकास पर होना चाहिए। खेती में सामूहिकीकरण के मामले में उन्होंने कहा था कि पहले तकनीक का विकास कर लिया जाना चाहिए तभी सामूहिकीकरण हो पायेगा। तकनीक और उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए वे विदेशों पर निर्भर रहने के कायल थे। वे सोवियत संघ और साम्राज्यवादियों से इसे आयात करना चाहते थे।

माओ ने इन सारे विचारों के खिलाफ संघर्ष किया। उन्होंने तेजी से समाजवाद की ओर बढ़ने की वकालत की। समाजवाद स्थापित होने के बाद उन्होंने कहा कि अभी भी उत्पादन संबंध पिछड़े हुए हैं और उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए भी उत्पादन संबंधों को विकसित करना जरूरी है। उन्होंने खेती के सामूहिकीकरण में तकनीक के मुकाबले लोगों पर जोर दिया। वे तकनीक और समग्र विकास के लिए आंतरिक शक्तियों पर निर्भर रहने के पक्षधर थे।

एक ओर ल्यू–डेंग और दूसरी ओर माओ तथा उनके समर्थकों के बीच संघर्ष चलता रहा और वह महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौर में सबसे ऊंचे स्तर पर पहुंच गया। ल्यू और डेंग को उनके पदों से हटा दिया गया। ल्यू शाओ ची की तो कुछ समय बाद मृत्यु हो गई लेकिन डेंग स्याओ पिंग माफी मांग कर **1973** में पार्टी में बहाल हो गया। लेकिन वापस आकर उसने अपनी कारगुजारियां फिर नहीं बंद कीं और उसे **1976** में दोबारा पदों से हटा दिया गया।

लेकिन चीन की पार्टी के भीतर समाजवादी और पूंजीवादी रास्तों पर चलने वालों के बीच संघर्ष बहुत तीखा था। एक और माओ तथा उनके चार पक्के सहयोगी (चांग चिन चियाओ, याओ वेन युवान, चियांग चिन, वांग हुघ वेन तथाकथित गैंग ऑफ फोर) समाजवाद के लिए संघर्ष कर रहे थे तो दूसरी ओर हुआ–कुआ फेंग और डेंग वगैरह पूंजीवाद के लिए।

1976 में माओ की मृत्यु हो गई और उनके मरते ही दक्षिणपंथियों ने तुरंत पार्टी और राज्य पर कब्जा कर लिया। अभी डेंग स्याओ पिंग पर्दे के पीछे था और उसने हुआ–कुआ फेंग को इस्तेमाल किया। माओ के चार पक्के समर्थकों समेत हजारों लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। हजारों लोगों को मौत की सजा देकर रास्ते से हटा दिया गया।

कुछ समय तक पीछे से अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के बाद डेंग स्याओ पिंग सामने आ गया और उसने वह करना शुरू किया जो वह **1949** से ही करना चाहता था। उसने कहना शुरू किया कि **1949** के बाद माओ ने बहुत सारी गलतियां कीं। **1956** के बाद के माओ को तो उसने खारिज ही कर दिया। खासकर उसने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति पर निशाना साधा और उसे महान विपदा घोषित कर दिया।

उसने दुनिया भर की संशोधनवादी पार्टियों से चीन की पार्टी के संबंध बहाल करने शुरू किये। उसने सबको कम्युनिस्ट घोषित कर दिया।

सबसे बढ़कर उसने तीन दुनिया का सिद्वान्त प्रचारित करना शुरू किया। इसे उसने न केवल चीनी पार्टी और चीनी राज्य बल्कि समूचे विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन की आम नीति घोषित कर दिया। उसने इस वर्ग सहयोगी संशोधनवादी सिद्वान्त से मार्क्सवाद पर भंयकर कुठाराघात किया।

इसके साथ ही उसने अपने पुराने सिद्वान्तों पर चलते हुए चीन को पूंजीवादी रास्ते पर चलाना शुरू कर दिया। तीन–चार साल के अंदर खेती का निजीकरण कर दिया गया। उद्योग व व्यापार के क्षेत्र में भी निजी उद्यमों को छूट दे दी। विदेशी तकनीक और पूंजी के लिए उसने देश के दरवाजे खोल दिये। देखते ही देखते चीन एक खुले पूंजीवादी देश में तब्दील हो गया। पुरानी चीज कोई रह गई तो वह थी तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टी का शासन जो आज भी जारी है। आज का पूंजीवादी चीन तो भारत के पूंजीपति वर्ग के लिए भी ईर्ष्या की वस्तु है।

डेंग स्याओ पिंग एण्ड कंपनी ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को महान विपदा तो घोषित कर दिया लेकिन उसके सिद्वान्तों से न तो उनकी टकराने की हिम्मत थी और न जरूरत। वे पूंजीवादी थे और पूंजीवाद स्थापित करना चाहते थे। इसलिए सांस्कृतिक क्रांति को महान विपदा घोषित कर उसे एक ओर ठेल देना ही उनके लिए सबसे सुभीते का काम था। और चूंकि सच्चे कम्युनिस्टों को ठिकाने लगाकर उन्होंने प्रतिरोध को पहले ही बहुत कमजोर कर दिया था इसलिए वे ऐसा कर सकते थे।

डेंग स्याओ पिंग का अपना व्यक्तिगत इतिहास ही यह दिखाता है कि चीन में पूंजीवादी पथगामियों का आधार कितना मजबूत था, इनकी जड़ें कितनी गहरी थीं। डेंग स्याओ पिंग दो बार पार्टी व राज्य के पदों से हटाया गया लेकिन माओ के मरते ही वह सत्ता के शीर्ष पर आ गया। यह यूं ही नहीं हो सकता था।

चीन में समाजवाद नव जनवादी क्रांति के चरण से गुजर कर कायम हुआ था। चीन क्रांति से पहले एक अर्ध–सामंती अर्ध–औपनिवेशिक देश था इसलिए वहां क्रांति की पहली मंजिल नव जनवादी क्रांति थी– सामंतवाद, साम्राज्यवाद विरोधी क्रांति। जनवादी क्रांति होने के चलते इसमें जनवादी तत्वों का शामिल होना स्वाभाविक था। चूंकि क्रांति का नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी इसलिए ऐसे तत्वों का भारी मात्रा में पार्टी में शामिल हो जाना लाजिमी था।

जब तक क्रांति नव जनवादी क्रांति की मंजिल में थी तब तक ऐसे तत्वों को कोई परेशानी नहीं थी। उन्होंने बाकियों की तरह क्रांति में शिरकत की। लेकिन जब क्रांति अगले चरण में, समाजवाद के चरण में प्रवेश कर गई तो इनके लिए खासी परेशानी पैदा हो गई। ये समाजवाद की ओर नहीं जाना चाहते थे। ये पूंजीवाद स्थापित करना चाहते थे। जब एक बार इनकी इच्छा के विरुद्व समाजवाद कायम हो गया तो फिर ये पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए पुरजोर प्रयास करने लगे। समाजवाद में मौजूद पूंजीवादी आधार के और समाजवाद के भीतर पैदा होनेवाले नये–नये पूंजीवादी तत्वों ने इनमें इनकी मदद की।

मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओ विचारधारा पर डेंग स्याओ पिंग का हमला कम्युनिस्टों के लिए बहुत घातक था। इसने कम्युनिस्टों की कतारों में बहुत विभ्रम पैदा किया। धीमे–धीमे कर ही कम्युनिस्ट क्रांतिकारी डेंग के इस हमले से पैफले विभ्रम से उबर पाये। बहुत सारे इससे कभी नहीं उबर पाये और संशोधनवाद के दलदल में डूब गये। विश्व स्तर पर परिपक्व कम्युनिस्ट पार्टियों और नेतृत्व के अभाव ने संशोधनवाद की ओर भटकाव को रोक पाना बहुत मुश्किल बना दिया। आज भी विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन के सामने प्रमुख खतरा संशोधनवाद का ही है।

VIII

माओ की मृत्यु के बाद मार्क्सवाद पर एक और हमला अलबानिया की लेबर पार्टी के नेता अनवर होजा ने किया।

खुश्चोव के संशोधनवाद के खिलाफ माओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के संघर्ष में अनवर होजा और अल्बानिया की पार्टी उनके साथ थे। इसी कारण

खुश्चोव ने अल्बानिया से सोवियत संघ के राज्य के रिश्ते खराबकर उसे दबाव में लेने की कोशिश भी की थी। चीन की पार्टी पर हमला करने के लिए खुश्चोव ने अक्सर अलबानिया पर हमले का इस्तेमाल भी किया था। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने भी भरसक अलबानिया और उसकी पार्टी की मदद की थी। **1960** के दशक के अंत तक दोनों के रिश्ते बहुत प्रगाढ़ थे।

लेकिन जब **1970** के दशक की शुरूआत में चीन ने संयुक्त राज्य अमेरिका से अपने संबंध सामान्य करने के प्रयास शुरू किये तो अनवर होजा को यह रास नहीं आया। उन्होंने इस पर अपनी नाखुशी जाहिर की। इसके बाद माओ के प्रति उनकी दृष्टि आलोचनात्मक होती गई और माओ की मृत्यु के समय तक वहां पहुंच गई जहां उन्होंने उन्हें संशोधनवादी कहना शुरू कर दिया। जहां पहले उन्होंने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का समर्थन किया था और उसी की तर्ज पर अपने यहां अभियान चलाये थे वहीं अब वे उसके कटु आलोचक हो गये।

माओ की मृत्यु के बाद एकाध साल चुप रहने के बाद उन्होंने माओ पर खुला हमला बोल दिया। हुआ कुआ फेंग और डेंग स्याओ पिंग द्वारा प्रसारित तीन दुनिया के सिद्वान्त को माओ का सिद्वान्त बताकर उन्होंने माओ को संशोधनवादी, वर्ग सहयोगी घोषित कर दिया। सच्चाई यह है कि माओ ने चीनी राज्य के वैदेशिक नीति के केवल एक हिस्से के तौर पर, वह भी रणकौशल के तौर पर तीन दुनिया की बात कही थी। उसे पार्टी और राज्य की आम नीति घोषित करने का काम हुआ कुआ और डेंग ने किया था। अनवर होजा ने कहा कि माओ कभी भी कम्युनिस्ट नहीं थे और चीन कभी भी समाजवादी देश नहीं था। माओ एक पेटी बुर्जुआ क्रांतिकारी थे जिनमें कन्फ्रयूशियस और बौद्व धर्म से लेकर भांति–भांति के तत्वों का मिश्रण था। माओ द्वारा स्टालिन का मूल्यांकन गलत था और स्टालिन शत–प्रतिशत सही थे। चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति न तो महान थी, न सर्वहारा, न सांस्कृतिक और न ही क्रांति। यह तो महज सत्ता के लिए पार्टी के दो गुटों का संघर्ष था। दोनों ही गुट गैर कम्युनिस्ट थे। माओ का यह विश्लेषण गलत है कि समाजवाद की स्थापना के बाद वर्ग बने रहते हैं। समाजवाद में वर्ग समाप्त हो जाते हैं लेकिन वर्ग संघर्ष बना रहता है क्योंकि पुराने विचार और आदतें बनी रहती हैं। इसी तरह कम्युनिस्ट पार्टी को एकाश्म होना चाहिए और विरोधी तत्वों को तुरंत निकाल बाहर करना चाहिए। माओ का यह कहना गलत है कि सभी चीजों की

तरह पार्टी भी अंतरर्विरोधों से युक्त है और उसमें सर्वहारा और बुर्जुआ विचारधारा के बीच संघर्ष चलता रहेगा। कुल मिलाकर यह कि उन्होंने माओ विचारधारा की एक–एक चीज को नकार दिया।

लेकिन ऐसा करते हुए अनवर होजा खुद संशोधनवादी अवस्थितियों पर जा पहुंचे। माओ न केवल कम्युनिस्ट थे और उन्होंने चीन में समाजवाद का निर्माण किया था बल्कि सोवियत संघ में स्टालिन की गलतियों और वहां पूंजीवाद की पुनर्स्थापना का विश्लेषण कर उन्होंने मार्क्सवाद का सृजनात्मक विकास भी किया था। अब इन सबको नकार कर वापस स्टालिन तक अपने को सीमित कर लेना आगे का नहीं बल्कि पीछे का कदम था। जिस तरह मार्क्सवाद के मार्क्सवाद–लेनिनवाद तक विकास के बाद खुद को केवल मार्क्सवाद तक सीमित कर लेना संशोधनवाद था उसी तरह अब माओ विचारधारा तक विकास के बाद केवल मार्क्सवाद–लेनिनवाद तक खुद को सीमित कर लेना संशोधनवाद था। अब केवल सर्वहारा तानाशाही की स्वीकृति ही पर्याप्त नहीं थी। अब इससे आगे बढ़कर यह मानना भी जरूरी था कि सर्वहारा तानाशाही के तहत क्रांति को जारी रखा जाना चाहिए, समाजवादी समाज को कम्युनिज्म की ओर आगे ले जाने के लिए सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की जानी चाहिए। यह सब न स्वीकार कर अनवर होजा माओ का खंडन करने लगे और अपने संशोधनवादी सिद्वान्त प्रस्तावित करने लगे।

अनवर होजा का संशोधनवादी में रूपान्तरण और माओ पर उनका हमला उनके राष्ट्रीय संकीर्णतावाद और रूढ़िवाद का परिणाम था। वे अपने संकीर्ण राष्ट्रीय हितों से प्रस्थान कर रहे थे और वहीं से सारी चीजों का मूल्यांकन कर रहे थे। दूसरी ओर वे स्टालिन तक के मार्क्सवाद पर रूढ़िवादी ढंग से खड़े थे। वे स्टालिन का वस्तुगत मूल्यांकन करने को तैयार नहीं थे। वे स्टालिन की गलतियों को स्वीकार करने और उनसे सीखने को तैयार नहीं थे। उनकी इस रूढ़िवादिता ने पलटकर उन्हें संशोधनवाद तक पहुंचा दिया। संकीर्ण राष्ट्रीय हितों की रक्षा ने इसमें प्रेरक का काम किया।

अनवर होजा चूंकि खुश्चोवी संशोधनवाद के खिलाफ संघर्ष में माओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ खड़े थे इसलिए माओ विचारधारा पर उनके इस हमले ने कम्युनिस्टों के बीच पहले से फैले (डेंग व कुआ द्वारा) विभ्रम को और बढ़ाया। अनवर होजा का जवाब देने के लिए स्वयं माओ तो थे नहीं, कोई और सुसंगत, परिपक्व और अनुभवी नेतृत्व भी नहीं था। इससे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन को और नुकसान पहुंचा।

IX

बर्नस्टीन और स्मिट के संशोधनवाद पर अपने लेख 'मार्क्सवाद और संशोधनवाद' में लेनिन ने लिखा थाः

> ''प्रसिद्व उक्ति है कि अगर रेखागणित की स्वयं सिद्वियां लोगों के हितों से टकरातीं, तो शायद उन्हें भी गलत साबित किया जाता। धर्मशास्त्र के पुराने पूर्वाग्रहों से टकराने वाले प्राकृतिक–ऐतिहासिक सिद्वान्तों ने अधिकतम प्रचण्ड संघर्ष पैदा किये और अब तक पैदा करते आये हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि मार्क्स का सिद्वान्त, जो आधुनिक समाज के अग्रगामी वर्ग की शिक्षा तथा संगठन में प्रत्यक्ष रूप से सहायता पहुंचाता है, उस वर्ग के कार्यभार बताता है और वर्तमान समाज व्यवस्था की जगह एक नई व्यवस्था की अनिवार्यता (आर्थिक विकास की बदौलत) सिद्व करता है, कोई आश्चर्य नहीं कि इस सिद्वान्त को अपने जीवन पथ पर एक–एक कदम बढ़ाने के लिए लड़ना पड़ा। ... ...
>
> ''लेकिन जब मार्क्सवाद ने अपने प्रति वैमनस्य रखने वाली सभी न्यूनाधिक अविकल शिक्षाओं को (मजदूर आंदोलन से–संपादक) निकाल बाहर किया, तब उन शिक्षाओं में अभिव्यक्त प्रवृत्तियां अपने लिए अन्य मार्ग ढूंढने लगीं। संघर्ष के रूप और कारण बदल गये, लेकिन संघर्ष चलता रहा। और मार्क्सवाद के अस्तित्व की दूसरी अर्ध–शताब्दी (पिछली सदी की अंतिम दशाब्दी से) मार्क्सवाद में ही निहित एक मार्क्सवाद विरोधी प्रवृत्ति के साथ संघर्ष से प्रारंभ हुई।''
>
> (लेनिन, मार्क्सवाद और संशोधनवाद, वही, खण्ड–तीन पृष्ठ–**374–376**)

जैसा कि उपरोक्त अवलोकन से स्पष्ट है मार्क्सवाद का पिछले सौ सालों का इतिहास मार्क्सवाद के भीतर मार्क्सवाद–विरोधी प्रवृत्ति से संघर्ष का इतिहास रहा है। पूंजीवाद के विकास के साथ या फिर समाजवाद के विकास के साथ जब भी नई सामाजिक परिघटनायें सामने आयी हैं तब ये प्रवृत्तियां खासतौर से पैदा हुई हैं। तब या तो इन्होंने नई परिस्थितियों के हिसाब से मार्क्सवाद का सृजनात्मक विकास करने से इंकार किया है या फिर मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आत्मा को खत्म करने वाले संशोधनवादी सिद्वान्त पेश किये हैं। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि नई परिस्थितियों में सुधारवादी भी पिटे–पिटाये ढंग से चलते नहीं रह सकते हैं।

बुर्जुआ विचारधारा बहुत पहले ही मार्क्सवाद से पराजित हो गई थी। स्वयं मार्क्सवादी विचारधारा के सर्वोच्च शिखरों को जज्ब कर और उन्हें पार करते हुए पैदा हुई। ऐसे में अब बुर्जुआ विचारधारा मार्क्सवाद को सीधे चुनौती नहीं दे सकती थी। वैसे भी पूंजीपति वर्ग के ऐतिहासिक तौर पर प्रतिक्रियावादी हो जाने के बाद उसके द्वारा नये क्रांतिकारी वर्ग, इतिहास के सबसे क्रांतिकारी वर्ग को चुनौती देना संभव नहीं रह गया था। यह गौरतलब है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से ही दर्शन, राजनीतिक अर्थशास्त्र और राजनीति तथा कला सभी क्षेत्रों में पूंजीपति वर्ग ने वैज्ञानिक, क्रांतिकारी रुख का परित्याग करना शुरू कर दिया था। मूल्य के श्रम सिद्वान्त को छोड़कर उसके मनोगतवादी सिद्वान्त **1870** के दशक में आने शुरू हो गये थे।

दूसरी ओर मार्क्सवाद, जो नये क्रांतिकारी वर्ग, मजदूर वर्ग की विचारधारा थी उसने मजदूर वर्ग में लगातार अपना आधार बनाया। वहां उसने बुर्जुआ व पेटी बुर्जुआ विचारधाराओं से टक्कर ली और उन्हें मजदूर आंदोलन से निकाल बाहर किया। **1880** का दशक आते–आते मजदूर आंदोलन में मार्क्सवाद स्थापित हो गया। जहां पहले इंटरनेशनल में मार्क्सवादियों के साथ–साथ प्रूदोंपंथी, बकूनिनपंथी, ब्लांकीपंथी इत्यादि थे वहीं दूसरा इंटरनेशनल मूलतः मार्क्सवाद के सिद्वान्तों पर गठित हुआ। मजदूर आंदोलन में मार्क्सवाद की विजय पूरी हो गयी।

लेकिन क्रांतिकारी मजदूर आंदोलन पूंजीपति वर्ग का दुश्मन है। यह पूंजीपति वर्ग की कब्र खोदता है। इसलिए पूंजीपति वर्ग हजारों तरीकों से कोशिश करता है कि वह इस आंदोलन को ध्वस्त करे। और किसी भी किले को ध्वस्त करने को सबसे आसान तरीका है उस पर भीतर से कब्जा करना। यदि मजदूर आंदोलन पर भीतर से कब्जा कर लिया जाय तो उसे पूंजीपति वर्ग की कब्र खोदने से रोका जा सकता है, उसे पालतू बनाया जा सकता है। उसे पूंजीवाद में सुधार तक समेटा जा सकता है।

इसीलिए पूंजीपति वर्ग हर चन्द कोशिश करता है कि वह मजदूर वर्ग की विचारधारा को भ्रष्ट करे, उसे क्रांतिकारी रास्ते से भटकाए। यदि मजदूर वर्ग के नेताओं को प्रभावित कर उनके विचारों को सुधारवादी दिशा में मोड़ा जा सके तो यह सबसे अच्छी बात होगी। इसके लिए पूंजीपति वर्ग हजारों तरीके अपनाता है।

पूंजीपति वर्ग के विद्वान लगातार यह प्रचारित करते रहते हैं कि मार्क्सवाद के सिद्वान्त गलत हैं। मार्क्सवाद का विद्रूप बनाने से लेकर बड़ी–बड़ी मार्क्सवाद विरोधी पोथियां लिखने तक वे सारा कुछ करते हैं। वे कम्युनिज्म के इतिहास और उसके नेताओं के चरित्र पर कालिख पोतते हैं। इसके लिए वे पूंजी की समस्त प्रचार शक्ति का इस्तेमाल करते हैं। पेटी बुर्जुआ युवकों/युवतियों को स्कूल–कालेजों व

विश्वविद्यालयों में मार्क्सवाद विरोध की शिक्षा देते हैं और इस विशिष्ट क्षेत्र में कैरियर बनाने को प्रोत्साहित करते हैं। वे मार्क्सवाद विरोधी प्रोफेसरों को सम्मानित करते हैं। हजारों बार मार्क्सवाद को गलत और असफल घोषित करने के बाद वे एक बार फिर इसकी जोर–शोर से घोषणा करते हैं।

पूंजीपति वर्ग के इस प्रयास का प्रभाव मजदूर आंदोलन पर पड़ता है। बुर्जुआ व पेटी बुर्जुआ पृष्ठभूमि से मजदूर आंदोलन में आने वाले अनेक लोग इन विचारों का अंश लेकर आते हैं। उनकी वर्गीय पृष्ठभूमि से मिलकर ये विचार ज्यादा स्थाई हो जाते हैं और ये लोग आसानी से उनसे मुक्त नहीं हो पाते। ये अक्सर मार्क्सवाद के सिद्वान्तों में इनसे मिलावट करने का प्रयास करते हैं। दूसरी ओर मजदूर पृष्ठभूमि के लोग भी इन विचारों के प्रचार से अप्रभावित नहीं रह पाते, खासकर यदि वे अभिजात मजदूर पृष्ठभूमि के हों।

इन सबके चलते मजदूर आंदोलन में बुर्जुआ विचारों की घुसपैठ होती रहती है और समय–समय पर यह गंभीर रूप धारण कर लेती है। तब सुधारवादी विचारों की एक पूरी श्रृंखला ही संशोधनवाद के रूप में सामने आ जाती है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि संशोधनवाद बुर्जुआ विचारधारा है। इसका सारतत्व है मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आत्मा को नष्ट कर इसे पूंजीपति वर्ग के अनुकूल ढाल देना, उसे सुधारवादी बना देना। इस तरह संशोधनवादी वस्तुतः पूंजीपति वर्ग के एजेन्ट होते हैं। वे मजदूर आंदोलन में पूंजीपति वर्ग के गुर्गे होते हैं जो मजदूर वर्ग को पूंजीपति वर्ग का तख्ता पलटने के ध्येय से हटाकर उसे सुधार के दायरे में सीमित कर देते हैं।

बुर्जुआ विचारधारा अब मार्क्सवाद से सीधे नहीं टकरा सकती। अब वह संशोधनवादियों के माध्यम से मार्क्सवाद पर हमला करती है। वह संशोधनवादियों के माध्यम से मार्क्सवाद को भ्रष्ट और विकृत करने का प्रयास करती है।

वैचारिक और भौतिक दोनों स्तर पर मजदूर आंदोलन पर दबाव बना रहता है। देश के भीतर पूंजीपति वर्ग यह दबाव बनाता है तो देश के बाहर से साम्राज्यवाद। संशोधनवाद इन दोनों के सामने समर्पण है। संशोधनवादी मजदूर आंदोलन और क्रांति से गद्दारी कर इनके सामने समर्पण कर देते हैं और इनके विचारों को अपना लेते हैं।

संशोधनवाद का वर्गीय और सामाजिक आधार है। पूंजीवादी समाज में पूंजीपति और मजदूर वर्ग के अलावा भारी मात्रा में निम्न बुर्जुआ वर्ग भी होते हैं। ये नये–नये पैदा भी होते रहते हैं। ये पूंजीवाद में हमेशा तबाही के कगार पर खड़े रहते हैं। इनमें से कई लोग मजदूर आंदोलन में शामिल भी हो जाते हैं। इस तरह मजदूर आंदोलन पेटी बुर्जुआ वर्ग से रूबरू होता है। न केवल मजदूर वर्ग पेटी बुर्जुआ वर्ग और उसके परिवेश से दो चार होता है बल्कि पेटी बुर्जुआ लोग मजदूर पार्टी में भी आते हैं। पेटी बुर्जुआ से आने वाले ये लोग मजदूर आंदोलन में न केवल अपने वर्ग की चारित्रिक विशेषताएं लाते हैं मसलन ढुलमुलपन, फैशनपरस्ती, अधैर्य, अराजकता, मनोगतवाद व्यक्तिवाद वगैरह बल्कि वे बुर्जुआ विचारों के वाहक भी होते हैं। इस तरह वे बुर्जुआ व पेटी बुर्जुआ विचारों से मजदूर आंदोलन को ग्रस्त करते रहते हैं। आस–पास का पेटी बुर्जुआ परिवेश भी मजदूर आंदोलन को इसी दिशा में प्रभावित करता है।

स्वयं मजदूरों की पातों में भी ऐसे तत्व होते हैं जो संशोधनवादी विचारों के लिए सुग्राही साबित होते हैं। एक ओर ऐसे मजदूर होते हैं जो अभी–अभी पेटी बुर्जुआ जीवन की तबाही के बाद मजदूर बने होते हैं। ये अभी भी भारी मात्रा में पेटी बुर्जुआ अवशेषों को लिए होते हैं। दूसरी ओर मजदूरों का एक छोटा सा हिस्सा बाकी मजदूरों से ऊपर, अभिजात मजदूरों की श्रेणी में पहुंच जाता है। यह अभिजात मजदूर वर्ग अपने उपभोग और रहन–सहन में निम्न बुर्जुआ के निचले हिस्से जैसा हो जाता है और उसकी तरह की आदतें और स्वभाव ग्रहण कर लेता है। पेटी बुर्जुआ कूपमंडूक की स्थिति तक पहुंच गया यह अभिजात मजदूर वर्ग संशोधनवादी विचारों के लिए बहुत अनुकूल साबित होता है। संशोधनवादी पार्टियों के नेता, ट्रेड यूनियनों के नौकरशाह, मजदूर अखबारों के कर्ता–धर्ता इत्यादि इसी अभिजात मजदूर वर्ग से आते हैं और इसे ही अपना आधार बनाते हैं। वे बाकी मजदूर वर्ग और क्रांति के ध्येय से अपना नाता तोड़ लेते हैं।

पूंजीवाद का साम्राज्यवाद में संक्रमण और साम्राज्यवाद द्वारा बाकी दुनिया से कमाया जाने वाला अतिलाभ अभिजात मजदूरों के पैदा होने की जमीन तैयार करता है। मुट्ठी भर साम्राज्यवादी देशों के साम्राज्यवादी पूंजीपति न केवल अपने देश के मजदूरों को लूटते हैं बल्कि वे बाकी दुनिया को भी लूटते हैं। बाकी दुनिया से कमाये जाने वाले अतिलाभ का एक छोटा सा हिस्सा वे अपने देश के मजदूरों के अत्यंत छोटे से ऊपरी हिस्से को दे देते हैं। यह वह हिस्सा होता है जो ट्रेड यूनियनों में संगठित होता है। इस तरह वे थोड़ी सी जूठन देकर उसे अभिजात बना देते हैं और बाकी मजदूर वर्ग से उसे काट देते हैं। यह अभिजात मजदूर वर्ग साम्राज्यवाद का मजदूर वर्ग में सामाजिक अवलंब बन जाता है। यह मजदूर वर्ग में सुधारवाद, संशोधनवाद का वाहक बन जाता है।

यहां तक कि बाकी पूंजीवादी देशों में भी पूंजीपति वर्ग संगठित मजदूरों के ऊपरी हिस्से को कुछ विशेष सुविधायें और रियायतें देकर उन्हें अभिजात मजदूरों की श्रेणी में ले आता है। इन देशों में ये अभिजात मजदूर उसके विचारों के वाहक का, सुधारवाद–संशोधनवाद के वाहक का काम करते हैं।

X

जैसा कि एंगेल्स ने कहा था, समाजवाद के इतिहास का अध्ययन करना इसलिए भी जरूरी है कि पहले काबू पा ली गई गैर सर्वहारा प्रवृत्तियां, या गैर सर्वहारा अवस्थितियां नये समय में रूप बदलकर सर्वहारा आंदोलन में फिर हाजिर हो जाती हैं। आज विश्व कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन की बात करें तो ढेरों संशोधनवादी भटकाव और विच्युतियां इसमें मौजूद हैं और लगातार नई–नई पैदा हो रही हैं। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन संशोधनवाद के दलदल में फंस रहे हैं। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में दक्षिणपंथी भटकाव का खतरा आज भी प्रमुख खतरा बना हुआ है। हालांकि कुछ इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप और कुछ वस्तुगत परिस्थितियों के दबाव में ''वामपंथी'' भटकाव की एक सशक्त प्रवृत्ति भी आंदोलन में विद्यमान है।

ऊपर अतीत की जिन संशोधनवादी विचारधाराओं का वर्णन किया गया है (यहां यह इंगित करना जरूरी है कि इनके अलावा अन्य गैर सर्वहारा विचारधाराएं भी कम्युनिस्ट आंदोलन में पैदा हुई हैं यथा – कैस्ट्रो–चे–ग्वेवारा की सोच, किम इल सुंग की सोच इत्यादि) उनके सारतत्व वाली संशोधनवादी सोच और विचार आज के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में मौजूद हैं। इन्हें पहचानना और इनके खिलाफ संघर्ष करना अत्यंत जरूरी है।

बर्नस्टीन के संशोधनवादी विचारों का केन्द्रीय सारतत्व था पूंजीवाद के अंतर्विरोधों को कम करके आंकना, उसकी उत्तरजीविता को बढ़ा–चढ़ा कर पेश करना और उसके हिसाब से मजदूर आंदोलन को ढालने की कोशिश करना। पूंजीवाद की उत्तरजीविता के सामने हार मान लेना इसका हिस्सा था।

वैसे यह सारे ही संशोधनवादी और सुधारवादी विचारों का आम चरित्र है कि वे पूंजीवादी, साम्राज्यवादी व्यवस्था के अंतर्विरोधों को कम करके आंकते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था उन्हें ज्यादा मजबूत दिखाई देती है। वह उन्हें क्रांति की ओर अग्रसर होती नहीं दिखाई देती। यहां से प्रस्थान कर वे मार्क्सवाद के सिद्वान्तों में कमी ढूंढना शुरू करते हैं, जो उनके अनुसार गलत या अपर्याप्त साबित हो गये हैं। फिर अगला

चरण इन सिद्वान्तों में संशोधन का होता है, मार्क्सवाद के बुर्जुआ विकृतीकरण का, मार्क्सवाद को बुर्जुआ के हिसाब से परिवर्तित करने का। कहने की बात नहीं कि यह पराजय मानसिकता का शिकार हो साम्राज्यवाद, पूंजीवाद के सामने समर्पण है।

विश्व सर्वहारा क्रांति के पहले चरण की क्रांतियों की पराजय के बाद, सोवियत संघ, चीन समेत सभी समाजवादी देशों में पूंजीवादी पुनर्स्थापना और साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मजदूर आंदोलन के पीछे हटने के कारण आज विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन में किसी हद तक निराशा और पस्तहिम्मती है। यह निराशा और पस्तहिम्मती पराजयवादी मानसिकता को पैदा कर रही है और साथ ही उस प्रवृत्ति को भी जिसका ऊपर जिक्र किया गया है। इस कारण भांति–भांति के संशोधनवादी विचार प्रकट हो रहे हैं– कुछ तो शब्दशः बर्नस्टीन की बातें हीं।

कम्युनिस्ट आंदोलन में एक प्रवृत्ति ठीक इसकी उल्टी है। वह लगातार साम्राज्यवाद–पूंजीवाद के अंतर्विरोधों के तीखा होते जाने की बात करती है। यह विश्व सर्वहारा की तात्कालिक पराजय को अस्वीकार करती है और लगातार क्रांति की शानदार परिस्थितियों की बात करती है। लेकिन यह करके वह पहले वाली प्रवृत्ति का निराकरण नहीं कर पाती। इससे भी बुरी बात यह है कि ऐसी बातें करने वाले वक्त के साथ पल्टी मारकर ठीक इसकी उल्टी बात करने लगते हैं। वे सरपट संशोधनवादी राह पर दौड़ पड़ते हैं।

साम्राज्यवाद, पूंजीवाद का वस्तुगत विश्लेषण, इसके अंतर्विरोधों का समुचित मूल्यांकन और तदनुरूप रणनीति और रणकौशल का विकास इन दोनों ही प्रवृत्तियों से निजात के लिए जरूरी है। इसके साथ ही जरूरी है विश्व सर्वहारा की तात्कालिक पराजय को विश्व ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना। पराजय मानसिकता से मुक्ति और क्रांति के सही कार्यभारों की पहचान इसके जरिये ही होगी।

पिछले सौ सालों में प्राकृतिक विज्ञानों ने बहुत प्रगति की है। इसके साथ प्रौद्योगिकी ने भी। इस आधार पर बुर्जुआ दार्शनिकों ने अपना भांति–भांति का कचरा परोसा है। ढेरों वैज्ञानिक भी इसके शिकार हैं। बुर्जुआ दार्शनिकों ने मार्क्सवादी दर्शन पर हमला बरकरार रखा है। **1980–1990** के दशक का उत्तर आधुनिकतावाद तो महज ताजा उदाहरण था। दूसरी ओर लेनिन के बाद विज्ञान की इन खोजों के आधार पर सामान्यीकरण और मार्क्सवादी दर्शन में विकास लगभग नहीं के बराबर हुआ है। केवल माओ की दार्शनिक रचनायें ही मार्क्सवाद में नया योगदान थीं।

विज्ञान के इस अभूतपूर्व विकास और बुर्जुआ दर्शन के हमले के कारण आज विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन में स्मिट जैसे लोगों की कोई कमी नहीं है। जाने–अनजाने मार्क्सवादी दर्शन को विज्ञान के नाम पर भ्रष्ट किया जा रहा है। मार्क्सवाद की जड़ों पर ही प्रहार करने वाली यह प्रवृत्ति अत्यंत खतरनाक है।

काउत्स्की ने बुर्जुआ जनवाद के सामने समर्पण किया था और उन्होंने सर्वहारा आंदोलन में इस बारे में अतीव भ्रम फैलाया था। बुर्जुआ जनवाद के वर्गीय चरित्र को नजरअंदाज करना, संसदीय जड़ वामनता और सर्वहारा तानाशाही से भय इत्यादि काउत्स्की के विचारों के मुख्य लक्षण थे। तब से दुनिया भर में बुर्जुआ जनवाद का और प्रसार हुआ है। फासीवाद और नाजीवाद के अनुभव के बाद बुर्जुआ जनवाद कुछ मायनों में और ज्यादा परिष्कृत हुआ है। अपने प्रसार और परिष्करण के द्वारा उसने अपने वर्गीय चरित्र को और ज्यादा छिपाया है। दूसरे विश्व युद्व के बाद कायम हुए तथाकथित कल्याणकारी राज्यों ने इसमें उसकी और मदद की। बुर्जुआ जनवाद, सर्वहारा और मजदूर सबके लिए है। बुर्जुआ राज्य सबका है इत्यादि भ्रमों को इसने मजबूत किया है।

इसके चलते बुर्जुआ जनवाद के बारे में आज कम्युनिस्ट आंदोलन में भांति–भांति के पराये विचार प्रकट हो रहे हैं। ये विचार फिर–फिर प्रकट होते हैं और अपेक्षाकृत परिपक्व पार्टी संगठन भी इस सवाल पर डांवाडोल हो रहे हैं। कइयों के मामले में ये काफी घातक स्तर तक विकास कर चुके हैं। बुर्जुआ जनवाद और सर्वहारा तानाशाही के सवाल पर ढीला पड़ना संशोधनवाद की ओर जाने का पहला चरण है। इन सवालों पर सर्वहारा दृष्टिकोणों पर दृढ़ता अत्यंत आवश्यक है।

काउत्स्की ने साम्राज्यवाद पर लेनिन के साथ बहस में अति साम्राज्यवाद की अपनी सुधारवादी अवधारणा पेश की थी। तब से लेकर अब तक साम्राज्यवादी दुनिया में काफी बदलाव आया है और साम्राज्यवाद की कार्यपद्वित में भी किसी हद तक परिवर्तन हुआ है हालांकि साम्राज्यवाद का मूल चरित्र जस का तस है। लेकिन इन बदलावों को आधार बनाकर ऐसे ढेरों विचार प्रकट हो रहे हैं जो अति साम्राज्यवाद की थीसिस के नवीन संस्करण हैं। वे साम्राज्यवादी अंतर्विरोधों, खासकर साम्राज्यवादियों के बीच प्रतिस्पर्धा को कमकर आंकते हैं और उनके बीच सहयोग को बढ़ा–चढ़ा कर देखते हैं। ऐसा करके वे विश्व सर्वहारा के सामने निराशाजनक संभावना प्रस्तुत करते हैं। वे साम्राज्यवाद की ताकत को बहुत बढ़ा–चढ़ा कर दिखाते हैं और प्रकारांतर से क्रांतिकारियों को हतोत्साहित करते हैं।

जैसा कि पहले कहा गया है सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण ट्राट्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव व बुखारिन की समर्पणवादी लाइनों के खिलाफ स्टालिन के कठोर संघर्ष के बाद हुआ था। पहला समाजवादी देश होने के कारण वहां समाजवादी निर्माण में कुछ गलतियां होनी स्वाभाविक थीं।

आज के कम्युनिस्ट आंदोलन में एक प्रवृत्ति सोवियत समाजवाद के गैर सर्वहारा पुनर्मूल्यांकन की है। बिना किसी नये तथ्यों के यह प्रवृत्ति बुर्जुआ प्रचार के प्रभाव में आकर सोवियत समाजवाद का तथाकथित पुनर्मूल्यांकन करती है तथा उसमें मीन–मेख निकालती है। ऐसा करते हुए वह चाहे–अनचाहे उन बातों को स्थापित करती है जिनका स्टालिन ने खंडन किया था। इस तरह यह ट्राट्स्की, जिनोवियेव, कामेनेव, बुखारिन इत्यादि को प्रकारांतर से पुनर्स्थापना करती है, उन्हें सही ठहराती है। यह सारा कुछ बुर्जुआ प्रचार के प्रभाव में होता है और केवल बुर्जुआ वर्ग की सेवा करता है। सोवियत समाजवाद के किसी वस्तुगत पुनर्मूल्यांकन की शर्तें आज पूरी नहीं होती। इसीलिए पुनर्मूल्यांकन का कोई भी प्रयास केवल बुर्जुआ वर्ग के विचारों के प्रभाव में होगा और उसी के फायदे का होगा। कम्युनिस्टों की अपनी जरूरत माओ द्वारा किये गये मूल्यांकन से पूरी हो जाती है।

टीटो गुट से शुरूआत करके ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी ने स्टालिन पर भयंकर हमला बोला था और उन्हें पूर्णतया खारिज कर दिया था। उनके द्वारा किया गया यह हमला वस्तुतः सोवियत समाजवाद और उसके जनक लेनिन पर हमला था। जैसा कि 'महान बहस' में चीन की पार्टी के नेता माओ ने कहा था सर्वहारा वर्ग की दो तलवारें हैं–लेनिन और स्टालिन। ख्रुश्चोव ने एक तलवार (स्टालिन) को फेंक दिया है, जल्दी ही वह लेनिन को भी फेंक देगा। या फिर यह कि लेनिनवाद विरोध का रास्ता स्टालिन विरोध से होकर जाता है।

आज भी कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में कुछ लोग स्टालिन से असहज महसूस करते हैं और जब तब दबी जुबान से स्टालिन विरोध के स्वर उठते रहते हैं। कभी–कभी ये स्वर काफी मुखर हो जाते हैं। मूलतः स्टालिन की गलतियों (माओ द्वारा चिन्हित) की बात करते हुए ये काफी आगे बढ़ जाते हैं और स्टालिन विरोध के करीब पहुंच जाते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि इनके पास भी बुर्जुआ प्रचार के अलावा कहने के लिए कुछ नहीं होता। स्टालिन सोवियत समाजवाद के इतिहास पुरुष हैं। उनके साथ यूं ही छेड़–छाड़ नहीं की जा सकती। छेड़–छाड़ करने वालों को इसकी कीमत संशोधनवाद से चुकानी पड़ेगी।

ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी ने ''शांतिपूर्ण संक्रमण'' का अपना नुस्खा पेश किया था जो बदले जमाने में बर्नस्टीन और काउत्स्की के सुधारवाद का ही एक नया संस्करण था। इसमें सारी बातें सारतत्व में बर्नस्टीन और काउत्स्की की ही थीं। यह मजदूर पार्टियों को क्रांति से हटाकर सुधार के रास्ते पर डाल देने का सबसे सफल नुस्खा था।

आज भी ''शांतिपूर्ण'' संक्रमण की ओर ललचाई आंखों से देखने वाले लोग जब–तब पैदा होते रहते हैं। खासकर क्रांति से पलायन करने वाले इसका बहुत जोर–शोर से प्रचार करते हैं। उन्हें अचानक ''शांतिपूर्ण संक्रमण'' में बहुत खूबियां दिखाई देने लगती हैं।

विश्व युद्व, युद्व और शांति, परमाणु युद्व इत्यादि के बारे में ख्रुश्चोवी विचारों की प्रतिध्वनि भी कभी–कभी कम्युनिस्ट आंदोलन में सुनाई पड़ती है।

''यूरो कम्युनिज्म'' के सिद्वान्तकारों ने ताल ठोंककर कहा था कि विकसित देशों में परम्परागत मार्क्सवादी अर्थों में सर्वहारा खत्म हो गया है। वहां वर्ग संघर्ष खत्म हो गया है। बुर्जुआ राज्य वर्गों से ऊपर हो गया है और उसका इस्तेमाल कर मजदूर, बुद्विजीवी, पूंजीपति सभी समाजवाद में, जनवादी समाजवाद में जा सकते हैं। मूलतः बर्नस्टीन की बातें दोहराने के बाद भी संशोधनवाद में इनका यह नया योगदान था।

कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में इसकी भी गूंज कभी–कभी सुनाई पड़ती है। उत्तर आधुनिकतावादियों के मार्क्सवाद पर हमले के बाद तो यह और ज्यादा होने लगा। ''यूरो कम्युनिस्टों'' से लेकर उत्तर आधुनिकतावादी सभी सर्वहारा वर्ग से उसकी विश्व ऐतिहासिक भूमिका छीन लेना चाहते हैं। ऐसा करके वे उसे क्रांति से विरत कर देना चाहते हैं।

विश्व सर्वहारा की तात्कालिक पराजय के इस दौर में सर्वहारा वर्ग, उसके चरित्र और उसकी ऐतिहासिक भूमिका के बारे में ये संदेह कम्युनिस्ट आंदोलन में भी ध्वनित होते हैं। ये कम्युनिस्ट आंदोलन के बुनियादी आधार पर ही संदेह प्रकट करते हैं। इस कारण इनके घातक असर का अंदाज लगाया जा सकता है। ढुलमुल मार्क्सवादी बुद्विजीवियों द्वारा लपककर इन विचारों को पकड़ने से स्थिति और खतरनाक हो जाती है।

न केवल विकसित देशों बल्कि विश्व पैमाने पर उत्पादन और संचय तथा साम्राज्यवाद और अभिजात मजदूर वर्ग की धारणाओं को सही मार्क्सवादी नजरिये से देखने से इन विचारों की गलत स्थिति तुरंत स्पष्ट हो जाती है। न केवल विश्व सर्वहारा मौजूद है बल्कि वह मात्रा और गुण दोनों दृष्टि से अपनी विश्व ऐतिहासिक भूमिका के लिए आज कहीं ज्यादा तैयार है।

डेंग स्याओ पिंग एण्ड कंपनी ने माओ के मरने के बाद महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को महान विपदा घोषित कर दिया। उन्होंने चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना कर दी। माओ की मृत्यु के तुरंत बाद चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना ने न केवल कुछ लोगों में पराजय मानसिकता को जन्म दिया बल्कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की उपादेयता के बारे में उनके मन में संशय को भी पैदा किया।

आज भी यह स्थिति बनी हुई है। कई भलेमानस इसी कारण महान सर्वहारा क्रांति को स्वीकार नहीं कर पाते। सिद्वांततः इसे ठीक मानते हुए भी वे उसे अंगीकार नहीं कर पाते।

स्वयं कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में ऐसी प्रवृत्तियां मौजूद हैं जो महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के महत्व को कम करके आंकती हैं। कुछ इसे केवल जुबानी स्वीकृति देने तक सीमित होती हैं।

एक अन्य प्रवृत्ति है महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को जुबानी तौर पर स्वीकार करते हुए डेंग को भी स्वीकार करना। चीन को समाजवादी देश मानने की किन्तु–परन्तु कोशिश करना। हालांकि ऐसे करने वाले बहुत जल्दी ही कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन से बाहर हो जाते हैं।

उपरोक्त के अलावा संशोधनवाद की पुरानी प्रवृत्तियां ट्रेड यूनियन मोर्चे पर, किसानों के सवाल पर, राष्ट्रीयता के मामले में, देश/राष्ट्र के बाहरी संबंधों के सवाल पर चुनाव में भागेदारी और बुर्जुआ जनवादी संस्थाओं के इस्तेमाल के सवाल पर, पार्टी की संरचना, उसकी सदस्यता, पेशेवर क्रांतिकारी तथा भूमिगत और खुले काम के सवाल पर तथा इसी तरह के ढेरों अन्य मामलों में प्रकट होती रहती हैं। इनके सारतत्व तो पुराने होते ही हैं, कई बार तर्क भी पुराने ही होते हैं।

आज विश्व कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन कठिन दौर से गुजर रहा है। वस्तुगत तौर पर विपरीत परिस्थितियों का दबाव और आत्मगत तौर पर बुर्जुआ वर्ग का हमला कम्युनिस्टों पर लगातार बना हुआ। ऐसे में संशोधनवादी प्रवृत्तियों का फिर–फिर उभरना लाजिमी है। ''वामपंथी'' भटकावों से बचते हुए संशोधनवादी, सुधारवादी प्रवृत्तियों को चकनाचूर करना तथा सही मार्क्सवादी विचारधारा पर कायम रहना क्रांति की ओर बढ़ने की बुनियादी शर्त है। हमें इस शर्त को पूरा करते रहना होगा।

.....